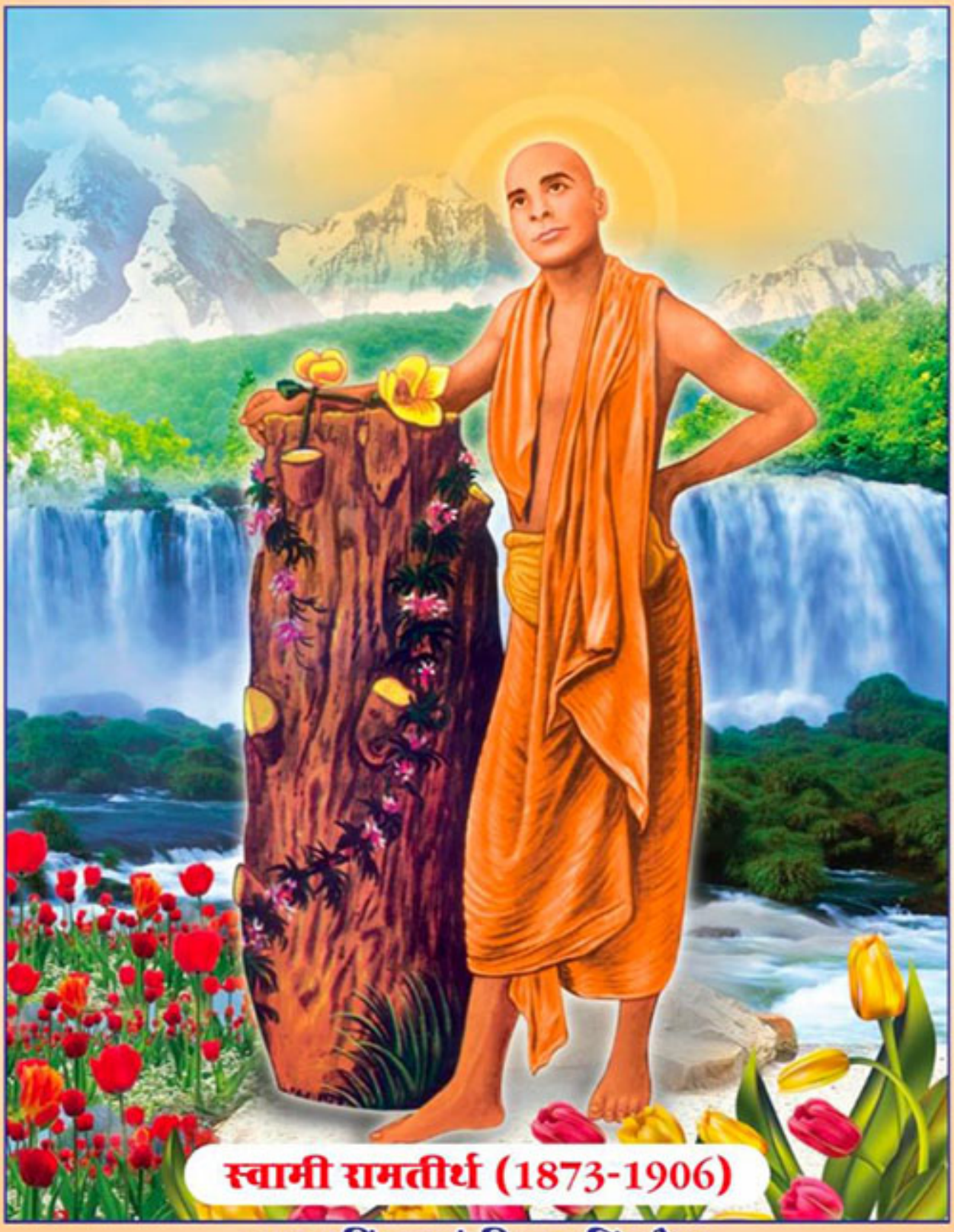
डाक पंजीयन क्र. : म.प्र./भोपाल/367/2024-26
आर.एन.आई. क्र. : 56428
टाइटिल कोड : MPHIN 09566
प्रेषण : प्रतिमाह दिनांक 7-8
वर्ष 36 अंक 04
(मानस समाचार/मानस भारती सहित)

प्रकाशन दिनांक 05 जनवरी, 2025
वर्ष 52 अंक 01
पौष/माघ मास 2080
पृष्ठ संख्या 92
मूल्य 75/-

तुलसी मानस भारती

तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश की अध्यात्म, संस्कृति और संस्कार पत्रिका



150 वीं जयंती पर विशेष

पंचायत एवं समाज सेवा संचालनालय मध्यप्रदेश द्वारा समस्त पंचायतों एवं प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों के लिए, शिक्षा विभाग द्वारा समस्त महाविद्यालयों, उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों/हाई स्कूलों, शिक्षा महाविद्यालयों, बुनियादी प्रशिक्षण संस्थाओं, राज्य स्तरीय संस्थाओं तथा केन्द्रीय एवं जिला पुस्तकालयों के लिए, स्थानीय शासन विभाग द्वारा नगर निगमों एवं नगर पालिकाओं के लिए तथा आदिमजाति कल्याण विभाग द्वारा आदिवासी शालाओं के लिए स्वीकृत। उ.प्र. शासन द्वारा जिला पुस्तकालयों एवं वाचनालयों के लिए अनुमोदित।

तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश की मासिक मुखपत्रिका

तुलसी मानस भारती

संस्थापक

पं. गोरेलाल शुक्ल

http://webmail.manasbhawanbhopal.com/

संपादक मंडल

रघुनंदन शर्मा

प्रकाशक

कार्याध्यक्ष, तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

raghunandanbjp@gmail.com

प्रभुदयाल मिश्र

प्रधान संपादक

तुलसी मानस भारती

prabhu.d.mishra@gmail.com

राजेन्द्र शर्मा

संयोजक, तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

sharmarajendra8june@gmail.com

कैलाश जोशी

सचिव,तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

kailashjoshi58@gmail.com

देवेन्द्र कुमार रावत

संपादक

सहसचिव, तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

dkmrawat@gmail.com

परामर्श

विजयदत्त श्रीधर, रमेश शर्मा, माधव सिंह दांगी

ग्राहक शुल्क : वार्षिक रु. 250.00, पंचवर्षीय रु.1100.00, आजीवन रु. 2500.00 इस अंक का रु.75.00

विदेश में : फिजी आयरलैण्ड, मॉरीशस व अन्यत्र समुद्री डाक से (भारतीय रुपये में) वार्षिक रु. 1250.00, पंचवर्षीय रु. 5000.00 आजीवन रु. 12500.00, हवाई डाक से वार्षिक रु. 1500.00 पंचवर्षीय रु. 6000.00 आजीवन रु. 15000.00

पंजाब नेशनल बैंक खाता क्र. 1276000100137956 आईएफसी कोड PUNBO127600

सम्पर्क : तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश, मानस भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल–462002, दूरभाष : 0755–2661196, 2660010

tulsimanasbharati@gmail.com *www.manasbhawanbhopal.com*

अनुक्रमणिका

निर्वचन

स्वामी रामतीर्थ–150वीं जन्म जयंती / प्रभुदयाल मिश्र / 03

स्वामी रामतीर्थ जीवनवृत्त / 05

आलेख

परमजिज्ञासु एवं ज्ञान पिपासु स्वामी रामतीर्थ / डॉ. शकुंतला कालरा / 15

स्वामी जी के जीवन कला सूत्र / 17

कहानी

धोखा करोगे धोखा खाओगे / 21

स्वार्थी हाथ / 24

युधिष्ठिर का कुत्ता / 27

श्रुति

वेद दर्शन / 32

व्याख्यान

शांति आश्रम, मथुरा में दिया व्याख्यान / 35

मनुष्य अपने भाग्य का आप स्वामी है / 41

राष्ट्रीय पुनर्जागरण के सूत्र

भारतवर्ष की वर्तमान आवश्यकताएँ / 55

भविष्यबोध

भारत का भविष्यकाल / 59

भारत सरकार को प्रेषित प्रस्ताव / 66

आलेख

संतों की वाणी में निहित हैं एकता के सूत्र / देवेन्द्र कुमार रावत / 69

सीय राम मय सब जग जानी / रघुनंदन शर्मा / 73

भारतीय संविधान पर संस्कृति की शीतन छाँह / विजयदत्त श्रीधर / 75

स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और संत महर्षि अरविंद / रमेश शर्मा / 78

युगतुलसी से साक्षात्कार / गंगा प्रसाद बरसैयां / 81

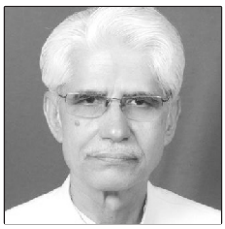
कृति समीक्षा

युग तुलसी का शताब्दी वर्ष –राम गुन गाऊँ / डॉ. गंगाप्रसाद बरसैयां / 84

पत्रांश / 89

प्रतिष्ठान समाचार / 90

निर्वचन



स्वामी रामतीर्थ- 150वीं जन्म जयंती

आदिशंकर, ज्ञानेश्वर और विवेकानंद जी के ज्ञान, वैराग्य और अद्वैत दर्शन की पराभूमि में प्रतिष्ठित स्वामी रामतीर्थ ने भी अल्प आयु– मात्र 33 वर्ष में देहोत्सर्ग किया। उनमें इन अन्य तीनों दैदीप्य दिव्यात्माओं की ही भाँति पारगमन, पराप्रवेश और पारंगत सनातन भारतीय मेधा की चमक और मानव मात्र को लोकोत्तर पथ प्रशस्त करने की अलौकिक क्षमता थी। पर सबसे विलग वे जीवन पर्यंत प्रकृति, परमात्मा और जीव की त्रिसत्ता में निर्बाध रूप से प्रतिष्ठित थे ।

तुलसी मानस प्रतिष्ठान ने एतदर्थ देश की विश्व गुरुत्व की प्रतिष्ठा की संकल्पना प्रकल्प में 2025 का तुलसी मानस भारती का वार्षिकांक इस अवसर विशेष पर इन्हीं 'राम' को समर्पित किया है। जिस महापुरुष ने अपना धाम, शिक्षा, जीवन, परिवार और सम्पूर्ण सांसारिक बोध सर्वथा और सर्वदा 'राम' को ही सौंपकर अपनी पहचान एक शब्द 'राम' की ही सर्वव्याप्ति को समर्पित कर दी हो तो इस प्रतिष्ठान को उसके स्मरण के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प महत्वपूर्ण भी नहीं हो सकता ।

इसी अभिप्राय से हमारा यह विशेषांक अब हमारी मूल योजना 'विश्व रामायण द्वितीय, शोध सामग्री अंक' पर केन्द्रित नहीं है। इसके लिए अधीत विद्वान् और मनीषियों ने हमें हमारे अनुरोध पर जो सामग्री उपलब्ध कराई उसका उपयोग हम यथासंभव मार्च 2025 में एक अतिरिक्त विशेषांक के रूप प्रकाशित करने की चेष्टा कर रहे हैं। इस तरह इस अंक को मार्च 25 में समाहूत तृतीय विश्व रामायण सम्मेलन में अतिथियों और प्रतिभागियों को सुलभ भी कराया जा सकेगा।

आशा है हमारे सहयोगी बन्धु–बाँधव और पत्रिका के प्रबुद्ध पाठक हमारे इस अनुरोध को मान्य करेंगे।

इस परिवर्तन की महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि यह है कि प्रतिष्ठान ने कुछ माह पूर्व भारत सरकार को प्रतिष्ठान के अपने उद्देश्य और संकल्पना के अनुसार नियमित प्रकाशन, प्रदर्शन और परिसंवाद शृंखालाओं से स्वामी राम के सूक्ष्म संदेश को राष्ट्रीय पटल पर परिप्रसारित करने का प्रस्ताव भेजा था। भारत सरकार ने हमारे इस आह्वान को उचित सहायता सहित सहर्ष स्वीकार किया है। इस योजना विषयक योग्य जानकारी इस अंक में यथा स्थान दी जा रही है ताकि हमारा पाठक वर्ग इससे स्वयं जुड़कर अन्य उत्साही जनों को भी हमारे समीप ला सके ।

स्वामी रामतीर्थ से संबंधित कुछ पुस्तकें हमें ज्ञानतीर्थ सप्रे संग्रहालय प्रमुख श्री विजयदत्तजी के सौजन्य से प्राप्त हुईं जिनका यथेष्ट उपयोग कर हम अंक की सामग्री को समृद्ध कर सके हैं। समयाभाव के कारण प्रचुर विषय बोध अन्तर्जाल साधन से भी प्राप्त कर उसका अनुवाद और संश्लिष्टीकरण कर उसे संप्रेषणीय बनाया गया है। इसके लिए स्वामी रामतीर्थ मिशन, गूगल, विकीपीडिया, एआई तथा अन्य सभी संचार माध्यमों के प्रति हमारा परिपूर्ण कृतज्ञता का भाव प्रकटन है ।

इस अंक का द्वितीय संक्षिप्त प्रभाग हमारी पूर्व संकल्पना के अनुसार युग तुलसी श्रीरामकिंकर जी उपाध्याय के जन्म शताब्दी वर्ष पर उस शोध सामग्री का विस्तार है जिसकी घोषणा हम अनेक मंचों से विगत अवधि में करते रहे हैं ।

हमारा विश्वास और अभीप्सा है कि पत्रिका का समग्र पाठक वर्ग इस महायात्रा में सदा की भांति हमारे साथ ही संसरित है चरैवेति–चरैवैति।

प्रभुदयाल मिश्र
प्रधान संपादक
9425079072

बहिरंग साधना

अपना जीवन योग्य प्रकार से चले, हम स्वयं अपनी नजरों में न गिरें। हमारा ज्ञान कर्म के रूप में अभिव्यक्त हो। हमारे विचार भी अच्छे हों और आचरण भी अच्छा हो। जीवन अपने ही ज्ञान के विरुद्ध न चले। जहां ज्ञान और क्रिया का मिलाप होता है, वहीं परमात्मा की अभिव्यक्ति होती है। ज्ञान को हमें अपनी चेतना में लाना है तब जाकर उस ज्ञान का प्रभाव होगा । ज्ञान की अभिव्यक्ति का अर्थ है प्रमाद की अभिव्यक्ति नहीं होने देना। जीवन सुंदरता और सतर्कता से जीना। ज्ञान की दृष्टि भेद का विरोध करती है और अज्ञान की दृष्टि भेद का प्रतिपादन करती है।

(प्रसाद पुस्तिका–स्वामी अनुभवानंद)

150 वां जन्म जयंती समारोह

स्वामी रामतीर्थ जीवनवृत्त

स्वामी रामतीर्थ संन्यास से पूर्व स्वामी रामतीर्थ का नाम गोस्वामी तीर्थ राम था। इनका जन्म 22 अक्टूबर, 1873 को तत्कालीन पंजाब प्रांत के जिला गुजरांवाला के ग्राम मुरारीवाला में हुआ था, जो इस समय पाकिस्तान में है। इनके पिता का नाम था पंडित हीरालाल और माता का निहालदेई। पंडित हीरालाल की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। उनके घर का खर्च धार्मिक संस्कारों (कर्मकांड) और खेती से उनके घर का खर्च चलता था। लेकिन तीर्थराम के जन्म के कुछ दिनों बाद ही उनकी माता का देहांत हो गया। इनका लालन–पालन किया इनके बड़े भाई गोंसाई गुरुदासमल और उनकी वृद्धा चाची ने। परंतु यहां कुछ लोगों का मानना है कि इस काम में उनकी बुआ श्रीमती धर्मकौर की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

गोस्वामी तीर्थराम का संबंध कुछ लोग 'रामचरित मानस' के रचनाकार संत तुलसीदास जी से मानते हैं, जबकि कुछ के विचार से इसी नाम के एक और संत थे, जिनकी प्रसिद्धि उत्तरी–पश्चिमी सीमा पंजाब प्रांत में थी, जिनकी गद्दी 'चित्रल' के पास स्थित 'स्वाट' में थी। यहां, अपने पूर्वजों की गद्दी पर तीर्थराम अपने पिता के साथ समय–समय पर माथा टेकने जाया करते थे।

बालक तीर्थराम जब 5 वर्ष के हुए, तो इन्हें मुरारीवाला प्राइमरी स्कूल पढ़ने के लिए डाल दिया। यहां उनके शिक्षक को, जो मुस्लिम थे, इस बात का संकेत मिल गया था कि उनके पास पढ़ने वाला साधारण–सा दिखने वाला बालक अतिविशिष्ट व्यक्तित्व का धनी है। यह भविष्य में विशिष्ट व्यक्तित्व का धनी बनेगा।

सभी जानते हैं कि उस समय समाज में बाल–विवाह की प्रथा थी।

इसके अनुसार कम आयु में ही बच्चों की शादी कर दी जाती थी। तीर्थराम के साथ भी ऐसा ही हुआ। उनका विवाह मुरारीवाला से 6–7 कोस की दूरी पर स्थित 'विरोके' ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार की बेटी 'शिवो देवी' के साथ कर दिया गया।

गांव के स्कूल में शिक्षा पूर्ण हुई तो आगे की शिक्षा के लिए पिता ने तीर्थराम को गुजरांवाला के हाई स्कूल में भेज दिया। यहां उनका संपर्क भगत धन्ना राम से हुआ, जो तीर्थराम के पिता के मित्र थे। धन्ना जी की ख्याति लोगों में एक ऐसे सिद्ध पुरुष के रूप में थी, जिसके द्वारा कही गई बात पूरी हो जाती थी। इसीलिए लोग उन्हें 'रबजी' इस नाम से पुकारते थे।

तीर्थराम को भगत जी बाकी लोगों से थोड़ा भिन्न लगे। उनका आचरण संसारी व्यक्तियों का–सा नहीं था। इसलिए उन्होंने भक्त जी को अपना मार्गदर्शक गुरु स्वीकार कर लिया।

मार्च सन् 1888 में तीर्थ राम ने मैट्रिक की परीक्षा पास की। पूरे प्रांत में उनका स्थान 38वां था। उन्हें छात्रवृत्ति नहीं मिली। उनके पिता नहीं चाहते थे कि उनका पुत्र अब आगे पढ़े। वह चाहते थे कि नौकरी करके वह उनका साथ दे। परंतु तीर्थराम अभी आगे और पढ़ना चाहते थे।

उन्होंने फॉरमैन क्रिश्चियन कॉलेज, लाहौर में इंटरमीडिएट की परीक्षा के लिए दाखिला ले लिया और इसी कॉलेज से बी.ए. और एम.ए. की परीक्षाएं पास कीं – 1890 में इंटरमीडिएट, 1893 में बी.ए. और 1895 में एम.ए.। इंटरमीडिएट में वे पंजाब प्रांत में 25वें, बी.ए. और एम.ए. में प्रांत में प्रथम आए। एम.ए. में उनका विषय गणित था।

पिता नहीं चाहते थे कि तीरथराम और पढ़े, अतः उन्होंने किसी प्रकार की सहायता देने से साफ तौर से उन्हें मना कर दिया। ऐसे में धन्ना जी, तीरथराम के मामा जी रघुनाथ मल ने और श्री झंडूमल ने इनकी सहायता की। धन्ना जी को लिखे पत्रों में उन्होंने अपने इस संघर्ष को बयान किया है। कई बार तो उनके पास पोस्टकार्ड खरीदने तक के लिए पैसे नहीं होते थे।

पढ़ाई के दौरान तीर्थराम में दो परिवर्तन विशेष रूप से हुए। उन्होंने योगवशिष्ठ का स्वाध्याय किया, परिणाम स्वरूप संसार को देखने की उनकी दृष्टि पूरी तरह से बदल गई। इसके कुछ दिन बाद ही उनकी बहन तीर्थदेई की आकस्मिक मृत्यु हो गई। अपनी बहन से वह बहुत प्रेम करते थे। इस घटना के बाद संसार की असारता और झूठे सांसारिक संबंधों की कलई मानो उनके सामने खुल गई। पढ़े–लिखे को उन्होंने अपने जीवन में भोग लिया था। भविष्य में होने वाले परिवर्तन का बीज मानो इस रूप में कहीं कहीं उनके गहरे में पड़ गया था। संभवतया इसी वजह से मन में समाज से मिलने वाले मान–सम्मान के प्रति भी उनका कोई आकर्षण भी नहीं रह गया था।

एम.ए. पास करने के बाद तीर्थराम के सामने चुनौती थी–नौकरी मिलना। उन्हें अपने परिवार, पत्नी और दो बच्चों के साथ अपने पिता को खर्च देना था। अमृतसर और सियालकोट में उन्होंने प्रयास किया, लेकिन वहां वेतन बहुत कम था–केवल 50–60 रुपये मासिक और आखिरी 21 दिसंबर 1895 को तीर्थराम उसी कॉलेज में गणित के प्रोफेसर बन गए, जहां से उन्होंने शिक्षा

प्राप्त की थी।

कॅरियर के रूप में यह एक अच्छा अवसर था। लगता था ईश्वर ने तीर्थराम के हितैषियों की सुन ली थी। लेकिन नियति को कुछ और ही मंजूर था। वह गुपचुप अपना ही ताना–बाना बुन रही थी। यह संयोग ही था कि मिशन कॉलेज, लाहौर में तीरथराम का भक्ति विषय पर भाषण हुआ, जिसने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। इसी स्थान पर दूसरा भाषण जब हुआ, तो वहां पंडित दीनदयाल और श्री गोपीनाथ जैसे विद्वान श्रोता भी उपस्थित थे। वैदिक परंपरा और भक्ति पर दिए गए इस भाषण को सुनकर लोगों को आश्चर्य हुआ कि एक युवा प्रोफेसर अध्यात्म और धर्म–संस्कृति के बारे में इतना सब कैसे जानता है।

कुछ दिनों तक प्रोफेसर तीरथराम छात्रावास के सुपरिटेंडेंट भी रहे। लेकिन उन्होंने जल्द ही इस पद से त्यागपत्र दे दिया, क्योंकि यह उनके स्वभाव के अनुकूल नहीं था। इससे उनकी साधना में रुकावट आ रही थी। अब अपने इष्ट का वियोग उनसे बर्दाश्त नहीं हो पा रहा था। और आखिर उन्होंने एक कदम आगे बढ़ा ही दिया। विदित हो कि गवर्नमेंट कॉलेज, लाहौर के प्रिसिंपल ने जब प्रो– तीरथराम का नाम प्रांतीय सिविल सर्विस के लिए भेजना चाहा, तो उन्होंने यह कहकर उसे अस्वीकार कर दिया कि 'जिस फसल को मैंने लोगों के बीच बांटने के लिए इकट्ठा किया है, उसे मैं अपनी सुख–सुविधाओं के लिए कैसे बेच सकता हूं।'

यहां तीरथराम के जीवन की उन महत्त्वपूर्ण घटनाओं का जिक्र करना बहुत जरूरी है, जिन्होंने उनके जीवन की गति को तेज घुमावदार मोड़ दिया। पहली घटना है स्वामी विवेकानंद का 5 नवंबर, सन् 1897 को लाहौर आगमन। यहां स्वामी जी के 'हिंदूधर्म', 'भक्ति' तथा 'वेदांत' इन तीन विषयों पर भाषण हुए। इन भाषणों ने लाहौर क्या पूरे पंजाब के प्रबुद्ध जिज्ञासुओं के हृदयों में मानो नई चेतना का संचार कर दिया। इस प्रभाव से गोस्वामी तीरथराम भी अछूते नहीं रहे। इन भाषणों का आयोजन गोस्वामी तीरथराम ने ही किया था। वे उस समय लाहौर की सनातन धर्म सभा के महामंत्री थे। प्रचलित है कि गोस्वामी तीरथराम ने स्वामी विवेकानंद के समक्ष 'भक्ति' के प्रतिपादन के संदर्भ में असंतुष्टि की बात कही थी, तभी अगले दिन 'वेदांत' पर स्वामी जी ने अपना ओजस्वी भाषण दिया था।

यहां यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि स्वामी विवेकानंद के इस अद्वैत– परक व्याख्यान को सुनकर, जिसमें जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प शक्ति और विषयों के त्याग पर बल दिया गया था–गोस्वामी तीरथ राम के वैराग्य को मानो पंख मिल गए थे। अब उनके लिए एक–एक पल बिताना मुश्किल हो रहा था। दूसरी घटना है द्वारका मठ के तत्कालीन शंकराचार्य श्री स्वामी माधवतीर्थ जी से मिली प्रेरणा। संभवतया, उन्हीं से मिले मार्गदर्शन के फलस्वरूप गोस्वामी तीरथराम ने संन्यास लिया था–अर्थात् स्वयं से स्वयं को दीक्षा। ऐसे अन्य उदाहरण पुराणों में भी मिलते हैं। वैराग्य के परम उत्कर्ष पर होने की स्थिति में इस दीक्षा का विधान शास्त्रों में दिया गया है। लेकिन इसे नियम नहीं, 'विशेष स्थिति' कहा जाता है। इस आदेश के बाद 'गुरु'की खोज का बंधन भी गोस्वामी

तीरथराम के समक्ष नहीं रह गया था। जब आत्मा ही गुरु है, तो उसकी तलाश भीतर ही क्यों न की जाए।

अक्टूबर सन् 1897 को वे जीवन के सत्य की खोज में लाहौर से हरिद्वार पहुंच गए। देवभूमि में प्रवेश का यह द्वार जिज्ञासुओं को सदा से अपनी ओर आकर्षित करता आ रहा है। मां गंगा की पावन धारा के किनारे बसी इस तपःस्थली का यह माहात्म्य ही है कि इसने दक्ष प्रजापति को दिव्य यज्ञ करने के लिए अपनी गोद में आमंत्रित किया। विदित हो कि इसके एक ओर जहां मां चंडी का पीठ विराजमान है, वहीं दूसरी ओर मनसादेवी अपने भक्तों की मनोकामना को पूर्ण कर रही हैं। प्रत्येक 12 वर्षों के बाद महाकुंभ का यहां लगना भी तो इसके आध्यात्मिक महत्त्व का बखान करता है।

गोस्वामी तीरथराम का मन बेचैन था। यह बेचैनी ही तो 'परम' को साधने का परम साधन है। यह स्थिति ऐसी थी, मानो किसी ने प्राणों को रोक दिया हो, तब जीवन के परम लक्ष्य को साधने का अंतिम क्षण बिलकुल सामने स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

वे ऋषिकेश होते हुए ऊपर घने जंगलों और ऊंची पर्वतमालाओं की ओर चल दिए। उनकी इस कठिन यात्रा को सहज बना रही थी मां गंगा के द्वारा गाई जा रही मीठी लोरी। ब्रह्मपुरी के घने जंगल की एक गुफा में उन्होंने अपने जीवन की परम अनुभूति का साक्षात्कार किया—यहीं उन्हें आत्मानुभूति हुई, ब्रह्मसाक्षात्कार हुआ। यहां उन्होंने सत्य पर स्वयं को वार दिया। अपने पिता को उन्होंने यहां से एक पत्र लिखा—'आज दीपावली है। मैं जुए में अपने प्रभु से हार गया हूं। अब मेरा कुछ नहीं है, मेरे पास कुछ नहीं बचा है।' यह पत्र 25 अक्टूबर, 1897 को लिखा गया था। उन्होंने अपने पत्रों में आत्मसाक्षात्कार को ही सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य बताते हुए उसे ही करने पर जोर देने की बात कही थी। उनके पत्र के इन शब्दों से उनकी आंतरिक स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है—'क्या कभी किसी ने मृतक के पास लौटने का संदेश भेजा है? जिसे उससे मिलना होता है, वह स्वयं उससे मिलने पहुंचता है।'

लेकिन इसके बाद गोस्वामी तीरथराम का लाहौर आना—जाना लगा रहा। और आखिर वह घड़ी आ गई, जिसने उनके नाम को ही नहीं, उनके जीवन की दिशा को ही पलट दिया। जुलाई 1900 में उन्होंने लाहौर को सदा—सदा के लिए छोड़ दिया यह कहते हुए —

अलविदा मेरी रियाजी! अलविदा!
अलविदा ऐ प्यारी रावी! अलविदा!
अलविदा ऐ दोस्तो—दुश्मन! अलविदा!
अलविदा ऐ दिल! खुदा ले अलविदा!
अलविदा ऐ राम! सबको अलविदा!

लेकिन अभी भी खुद को ठोक—बजाकर देखना बाकी था। यह जानकर कि कहीं कोई चूक तो नहीं हो रही, 1 जनवरी 1901 को तीरथ राम ने गैरिक वस्त्रों को भिलंगना को साक्षी मानकर पहन लिया। महाकाश में विचरण करने की इच्छावाले पंछी की यह मानो आखिरी छलांग थी—क्योंकि इसके बाद तो आकाश ही उसका आश्रय था। इस समय आर.एस. नारायण स्वामी भी उनके पास थे।

संन्यास लेने के बाद लगभग 11 मास में उत्तराखंड के ऊंचे—ऊंचे शिखरों, तलहटियों और

घने जंगलों की अनवरत यात्रा स्वामी रामतीर्थ ने की। 'सुमेरु यात्रा' का वर्णन, जिसका उल्लेख उन्होंने एक सुंदर लेख के रूप में अपने एक पत्र में किया है – विशेष रूप से पठनीय है। इस दौरान स्वामी जी ने 600 मील की यात्रा की।

सन् 1901 के अंत में स्वामी जी मैदान में सर्वप्रथम मथुरा पधारे। यहां स्वामी शिवगणाचार्य ने लघुरूप में सर्वधर्म सम्मेलनों का आयोजन किया था। दोनों बार स्वामी रामतीर्थ ही व्यासपीठ पर सभाध्यक्ष के रूप में विराजमान हुए। लाहौर के 'फ्री थिंकर' पत्र ने स्वामी जी के विनम्र और निर्भय स्वभाव की प्रशंसा की थी। लेकिन यहां स्वामी जी को लगा कि उनका प्रयोग अपने स्वार्थ साधने के लिए लोग कर रहे हैं। लोगों में जिज्ञासा का अभाव है वे आध्यात्मिक होने का दिखावा मात्र करते हैं। इसलिए वे फिर से अपनी प्रिय स्थली देवभूमि टिहरी में आ गए और की दिव्य साधना में डूब गए।

टिहरी के महाराज कीर्तिशाह की प्रकृति तर्क–प्रधान थी। उन्होंने नास्तिक दर्शनों का भी अध्ययन किया हुआ था। उन्होंने स्वामी रामतीर्थ से जब जीवन के विभिन्न प्रश्नों के सहज समाधान सुने और यह भी जाना कि उनकी क्या उपयोगिता है तथा उन्हें कैसे अपने दैनिक जीवन से जोड़ा जा सकता है, तो वे स्वामी जी के अनन्य भक्त बन गए। महाराज ने स्वामीजी को गोलकोठी में रुकने का आग्रह किया, और उन्होंने स्वीकार कर लिया। जब भी महाराज को समय मिलता, वे स्वामी जी के पास आ जाते और घंटों बैठकर अपनी जिज्ञासाओं को शांत करते।

सन् 1902 में समाचार–पत्रों में एक समाचार बिना किसी पुष्टि के प्रकाशित हो गया कि शिकागो में आयोजित सर्वधर्म सम्मेलन की तरह का एक आयोजन इस बार टोकियो में संपन्न होने जा रहा है। महाराज कीर्तिशाह ने स्वयं इसकी सूचना स्वामी जी को दी थी। महाराज ने स्वामी जी की स्वीकृति के बाद टोकियो जाने की सारी व्यवस्था कर दी। नारायण स्वामी भी उस समय उनके साथ थे। स्वामी जी का मार्ग में पड़ने वाले बंदरगाहों में हिंदू व्यापारियों ने भव्य स्वागत किया।

टोकियो पहुंचने पर उन्होंने इंडो–जापानी क्लब की ओर प्रस्थान किया, जहां उनकी मुलाकात सरदार पूर्ण सिंह से हुई, जो उस समय उपरोक्त संस्था के मंत्री थे और उसी क्लब में रहते थे। वहां जब उन दो युवा संन्यासियों का परिचय सदस्यों से करवाया गया, तो मानो अपनेपन की लहर पूरे वातावरण में बिखर गई। विशेषकर उस एक संन्यासी को देखने और उससे बात करने के बाद तो लोगों को ऐसा महसूस हुआ, मानो अधखिली महकती फूलों की खूबसूरत क्यारियों में बैठी, उड़ती, चलती, फुदकती, रंग–बिरंगी चिड़ियाँ चहक रही हों। जिनके मुखमंडल पर अनोखी चमक थी, उस युवा संन्यासी का नाम था स्वामी रामतीर्थ, जो अपने परम शिष्य के साथ विदेशियों को अपनी संस्कृति और धर्म को उन्हीं की भाषा में समझाने आया था। पूर्ण सिंह को तो मानो वह सब मिल गया था, जिसकी उन्हें तलाश थी। नारायण स्वामी ने जब पूर्णसिंह से पूछा, 'आप किस देश के निवासी हैं?' तो पूर्ण सिंह की आंखों में प्रेम की बूंदें तैर गईं। वो बोले, 'सारा संसार मेरा घर है!' यह वाक्य पूरा हो पाता कि

बड़े स्वामी ने धीरे से वाक्य को पूरा कर दिया और भलाई करना मेरा धर्म। बस इन्हीं दो वाक्यों ने सरदार पूर्ण सिंह का पूरा परिचय दे दिया था।

औपचारिक रूप से हुई परस्पर वार्ता कब परस्पर आत्मीयता और श्रद्धा का बीजारोपण कर गई, किसी को कुछ पता नहीं चला पूर्ण सिंह अब पूरन जी हो गए थे। अगले ही दिन पूरनजी पुरानी पुस्तकों की एक दुकान से दो बड़े–बड़े ग्रंथ ले आए, जो 1893 में शिकागो में सर्वधर्म सम्मेलन में हुए भाषणों का संग्रह था। इन ग्रंथों को पूरनजी ने स्वामी जी के टेबुल पर रख दिया। उन्हें देखकर स्वामी जी की प्रतिक्रिया थी 'यही तो राम चाहता था। देखा, प्रकृति कैसे राम की इच्छाओं को पूरा कर रही है?'

इसके बाद टोकियो में होने वाले सर्वधर्म सम्मेलन के बारे में तरह–तरह से बातचीत हुई, विचार–विमर्श हुआ। लेकिन तभी पता चला कि ऐसे किसी सम्मेलन का आयोजन टोकियो में नहीं हो रहा है, जिसके लिए अपने शिष्य नारायण स्वामी के साथ स्वामी रामतीर्थ जापान आए हैं। दूसरा कोई होता, तो इस समाचार को सुनकर जरूर निराश होता लेकिन स्वामी राम की मस्ती पर इसका कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा। बल्कि उन्होंने तो यहां तक कह दिया कि 'यदि टोकियो ऐसा कोई सम्मेलन नहीं कराना चाहता, तो न सही, राम तो अपना सम्मेलन करेगा ही।'
प्रकृति राम का साथ दे रही थी। इसीलिए जो भी उनसे मिलता, वह उनसे प्रभावित हुए बिना न रहता। प्रोफेसर तकात्कुसु को उनमें बौद्धधर्म और वेदांत के एक साथ दर्शन हुए। उनके अनुसार, 'स्वामी रामतीर्थ में सच्चा कवि और महान दार्शनिक एक साथ निवास करते थे। उनकी हंसी में ऐसी खनक थी, जो किसी के हृदय को भी अपनी ओर अनायास खींच सकती थी।'

एक बार कोई अपने परिवार के साथ स्वामी जी को मिलने आया। उस परिवार का कहना था कि 'इस दिव्य आनंद का स्वाद भला वह अकेले कैसे ले सकता है।' स्वामी जी से उसने पूछा, 'आपने अपने परिवार का परित्याग क्यों कर दिया?' तो स्वामी जी का जवाब था, 'क्योंकि मैं एक बेहतर परिवार की खोज में हूं, जिसके सदस्यों के बीच मैं अपने अनुभव को सहजता और ईमानदारी से बांट सकूं, जिन्हें उसकी जरूरत भी हो।'

इसी बीच टोकियो के कॉमर्स कॉलेज में स्वामी रामतीर्थ ने एक महत्त्वपूर्ण प्रवचन दिया सफलता का रहस्य। अखबारों में इसका विवरण पढ़कर रूस के राजदूत ने उनसे मिलने का प्रयास किया, लेकिन तब तक स्वामी जी सनफ्रांसिस्को जाने के लिए रवाना हो चुके थे।

वहां, सनफ्रांसिस्को में भी स्वामी जी का हार्दिक स्वागत हुआ। सभी उन्हें अपना अतिथि बनाना चाहते थे। बुद्धिजीवी या पढ़े–लिखे लोग ही नहीं, कैलीफोर्निया की पर्वतीय घाटियों में रहने वाले अशिक्षित देहातियों का भी स्वामी जी ने दिल जीत लिया था। हिलर दम्पति के साथ स्वामी जी काफी समय रहे। शास्तास्प्रिंग पर रहते समय वो कठोर परिश्रम करते। कमरे को गर्म करने के लिए वे जंगल से लकडियाँ काट कर लाते।

एक बार शास्ता पर्वत पर चढ़ने की प्रतिस्पर्धा में वे सर्वप्रथम आए। लेकिन इसमें उन्होंने कोई भी पुरस्कार नहीं लिया। इतना ही नहीं, स्वामी राम ने 30 मील दूरी की मैराथन दौड़ में

सम्मिलित होकर भी प्रथम स्थान प्राप्त किया था। यह सब राम ने अपने आनंद के लिए किया था जीतने या किसी को हराने के लिए नहीं।

'यूनिटी चर्च' में स्वामी रामतीर्थ के विचारों को जन–जन तक पहुंचाने के लिए एक व्याख्यान शृंखला का आयोजन किया गया जिसमें उन्होंने 'सफलता का रहस्य', 'प्रेम द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार', 'तुम क्या हो?', 'आनंद का इतिहास और निवास', 'पाप का निदान कारण और निवारण' जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर भाषण दिए। क्योंकि स्वामी जी का संदेश एक जाति–धर्म या संप्रदाय से संबंधित नहीं था, इसलिए उन्हें सुनने के लिए 'विमेन्स क्लब', 'स्प्रिच्युलिस्ट क्रिश्चियन यूनियन' जैसी कई संस्थाओं ने अपने यहां आमंत्रित किया।

ऐसा नहीं कि स्वामी रामतीर्थ ने सिर्फ 'अध्यात्म' की ही अपने व्याख्यानों में विवेचना की हो, उसके रहस्यों को खोला हो, उन्होंने तत्कालीन समस्याओं पर भी अपने विचारों को बिना किसी पूर्वाग्रह के, निर्भय होकर लोगों के सामने रखा। अमेरिका निवासियों से उनका विशेष आग्रह था कि वे भारत के युवाओं को उच्च शिक्षा प्राप्त करने में सहायता करें। अपने इसी आशय को स्पष्ट करने वाली एक छोटी–सी पुस्तिका' भारत वासियों के हितार्थ अपील', स्वामी जी ने अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति थ्यौडोर रुजवेल्ट को दी थी, जिसे उन्होंने गंभीरता से पढ़ा और स्वामी जी के विचारों और सुझावों की प्रशंसा की। इसी के साथ भारतीय युवकों से उनकी अपेक्षा थी कि वो विश्व के अलग–अलग स्थानों से ज्ञान अर्जित करने के बाद अपने देश वापस आएं और अपनी मातृभूमि की सेवा करें।

इसके बाद लगभग दो वर्षों तक अमेरिका में निवास के बाद स्वामी रामतीर्थ यूरोप, जर्मनी, फ्रांस, इटली और मिस्र आदि देशों से होते हुए 8 दिसंबर, 1904 को स्वदेश भारत लौट आए। यहां एक बात का विशेष रूप से जिक्र करना आवश्यक है कि मिड्ड की 'जामा मस्जिद' में उन्हीं की भाषा अर्थात् अरबी में ही वेदांत के मूलतत्त्व को उन्होंने उपस्थित श्रोताओं को समझाया था। इस दृष्टि से वे अकेले ऐसे संन्यासी हैं, जिन्होंने उतने ही अधिकार से इस्लाम की शिक्षाओं पर अपने विचार रखे, जितने अधिकार से वे हिंदू धर्म अर्थात् वेदांत पर व्याख्यान देते थे।

पश्चिमी देशों के जिज्ञासुओं को वेदांत का सारतत्व समझाने के बाद जब स्वामी रामतीर्थ स्वदेश वापस आए, तो उनके साथ काशी में एक विचित्र घटना हुई। हुआ यूं कि विद्वानों और पंडितों की नगरी काशी में जब वेदांत पर वे प्रवचन करने लगे, तो उपस्थित संस्कृत के विद्वानों ने प्रश्न किया कि 'आपने उस भाषा का विधिवत् अध्ययन किया नहीं, परंपरा वेदांत ग्रंथों का स्वाध्याय तो किया नहीं, ऐसे में यह कैसे संभव है कि आप उस विषय पर अपने विचार रखें, जिसकी मूल भाषा संस्कृत है। ऐसा करना अनधिकार चेष्टा है।' सतही तौर पर देखने से यह बात ठीक भी लगती है, लेकिन इसके पीछे भी ईश्वर की ही प्रेरणा थी। वैसे, विदित हो कि बीए में स्वामी जी ने संस्कृत विषय में अच्छे नंबर प्राप्त किए थे। इसके बाद स्वामी रामतीर्थ ने संस्कृत भाषा में उपनिषद् आदि ग्रंथों पर लिखी गई टीकाओं और भाष्यों का गहन अध्ययन किया।

इससे उन्हें आंतरिक रूप से और दृढ़ता प्राप्त हुई। इसके बाद वे चाहते थे कि वेदों पर एक निष्पक्ष टीका लिखें, जिससे सामान्य जिज्ञासु साधक को भी इन पवित्र ग्रंथों का आशय समझ आ सके। अपने जीवन के अंतिम दिनों में वे इसी पर गंभीरता से कार्य कर रहे थे।

इस समय व्यास आश्रम में निवास करते हुए आदिशंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित माया का रूप और स्वरूप उनके अंतर्मन में समाविष्ट था। इस समय अकसर वो समाधिस्थ ही रहते थे। इनकी आंतरिक स्थिति का अंदाजा इस समय नारायण स्वामी को लिखे गए पत्रों में स्पष्ट रूप से झलकता है। पूरन जी ने लिखा है 'मैंने एक कवि संन्यासी के हृदय को बार–बार छेड़ने की कोशिश की, लेकिन वह कहीं खो गया था। अब वहां शेष दिखाई देता था, परम मौन और गहरा ठहराव।' ऐसा ही होता है, जब सुंदरम् और शिवम् का सत्यम् में लय हो जाता है।

व्यास आश्रम में निवास करते समय स्वामी रामतीर्थ कभी–कभी हरिद्वार भी जाया करते थे। एक बार जब वे हरिद्वार में ही थे, तब उनकी चाची (विमाता), धर्मपत्नी शिवादेवी तथा छोटा पुत्र ब्रह्मानंद, जो उस समय केवल 7 वर्ष का ही था, लाहौर (मुरारीवाला) से स्वामी जी के दर्शन करने आए। अमेरिका से लौटने के बाद उन्होंने अपने प्रिय को देखा नहीं था। आर्थिक और मानसिक रूप से उनकी दशा ठीक नहीं थी। उन्हें लगा अपने प्रिय का दर्शन कर शायद मन को थोड़ी–बहुत शांति मिल सके।

परिवार के आने की सूचना जब पूरन जी ने स्वामी जी को दी, तो उन्होंने निर्देश दिया कि वे उन्हें गंगा स्नान आदि करने के बाद वापिस घर जाने को कहें। स्वामी जी उनसे नहीं मिलना चाहते थे। स्वामी जी के इन शब्दों को सुनकर पूरन जी भड़क उठे। उन्होंने कहा, 'ठीक है! मैं भी उन्हीं के साथ चला जाता हूं। बाकी भक्तों की तरह ये आपसे क्यों नहीं मिल सकते?'

तर्क मजबूत था। स्वामी रामतीर्थ ने उन्हें बुला लिया। बालक ब्रह्मानंद ने उन्हें स्कूल में सीखी कविता सुनाई। स्वामी जी ने उसे अंगूर का गुच्छा दिया। अपनी चाची से उन्होंने परिवार के अन्य सदस्यों की कुशलता जानी। चाची से बात करते समय बीच–बीच में उनकी हंसी वातावरण के भारीपन को कम कर जाती। शिवादेवी से उन्होंने कोई बात नहीं की। वह भी अपने सर्वस्व को एकटक निहारती रही थी बस। दोनों के पास कहने को शायद कुछ बचा न था, या तो दोनों एक–दूसरे को भलीभांति जान चुके थे, एकाकार हो चुके थे, या फिर साफ हो गया था कि दोनों के रास्ते बिलकुल अलग–अलग हैं जो कहीं नहीं मिलते हैं।

कुछ समय की बातचीत के बाद लाहौर से आए तीर्थयात्री वापस चले गए। बाद में एकदिन स्वामी जी ने पूरन जी को बताया कि उन्होंने ऐसा क्यों किया था। उनका कहना था 'कवि पत्थर नहीं बनाए जा सकते। आंतरिक विकास जिस मात्रा में होता है, आत्मीयता का भाव भी उतना ही विस्तृत होता जाता है। लेकिन प्रत्येक आश्रम की एक मर्यादा होती है।'

देह की आसक्ति टूट जाने के बाद शरीर में बने रहना तत्वज्ञानी को भार रूप लगता है, कुछ ऐसी ही दशा थी स्वामी रामतीर्थ की, जब वे

वशिष्ठ आश्रम में रह रहे थे। इसी समय उन्होंने स्व. जज लाला बैजनाथ जी की 'प्रार्थना' नामक पुस्तक के लिए भूमिका के रूप में 'उपासना' नाम से एक लेख लिखा था। इस समय स्वामी जी ज्यादातर मौन रहते थे। पूरे दिन या तो पुस्तकों को पढ़ने में व्यस्त रहते या फिर गाते–गुनगुनाते या फिर ध्यान में डूबे रहते। इस समय शारीरिक रूप से वे इतने दुर्बल हो गए थे कि पुस्तक उनके हाथ से कब छूटकर गिर जाती, उन्हें इस बात का पता ही नहीं चलता था। पूरन जी के अनुसार, 'स्वामी जी का व्यवहार बदल गया था। ऐसा लगता था मानो वो आने वाले कल को स्पष्ट रूप से देख रहे थे।'

पूरन जी जब वशिष्ठ आश्रम से जाने लगे तो स्वामी राम ने उनसे नहलाने को कहा। पूरन जी ने उनके कपड़े उतारे। वह झरने में जाकर खड़े हो गए। पूरन जी ने अपने हाथों से उन्हें नहलाया। स्वामी जी ने पूरन जी को आदेश दिया, 'जाओ और उस कार्य को आगे बढ़ाते रहना, जिसे राम ने शुरू किया है, क्योंकि अब राम मौन हो जाएगा।' पूरन जी ने इस बात को जब हल्के में लेना चाहा, तो उनकी प्रतिक्रिया बड़ी तीखी हुई। ऐसा लगा मानो किसी योगी की समाधि को तोड़ने की किसी ने चेष्टा की हो, और उसे चेतावनी मिली हो। पूरन जी की तब फिर आवाज न निकली।

पूरन जी को छोड़ने स्वामी राम कुछ दूर तक आए। पूरन जी ने चरण छूकर जब उनसे विदा मांगी, तो राम तेजी से मुड़े और भाग खड़े हुए। उन्होंने फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा। लगा सारे संबंधों को उन्होंने एक झटके में तोड़ दिया हो।

इस घटना के एक माह बाद स्वामी जी टिहरी आकर सिमलासू स्थित चंद्रभवन में रहने लगे। यह स्थान गोलकोठी के नाम से भी लोगों के बीच प्रसिद्ध था। इसके बाद नारायण स्वामी के लिए भी अपने से दूर गंगा किनारे एक कुटिया बनवाने और वहीं रहने का उन्होंने निर्देश दिया।

स्वामी रामतीर्थ अब बिलकुल अकेले थे। इसलिए वो महाराज कीर्तिशाह के सिमलासू स्थित चंद्रभवन में आ गए। एकांत में वे स्वाध्याय चिंतन करते तथा लेख लिखा करते। यहीं पर उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण लेख लिखा 'उन्नति का निश्चित विधान।' इसे लिखते समय कलम और पेंसिल दोनों का प्रयोग किया गया था। इस लेख में स्वामी जी ने उन्नति के उस नियम की चर्चा की है, जो प्रकृति में विद्यमान है और जिसे आध्यात्मिक जगत द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता है।

स्वामी जी इस समय शारीरिक रूप से दुर्बल तो थे ही, चट्टान से भिलंगना में कूदने के कारण उनके घुटने में चोट भी लग गई थी। इसलिए वे वहीं चंद्रभवन में भिलंगना से जल मंगवाकर स्नान किया करते थे। उनकी सेवा में एक रसोइया रहता था।

एक दिन सुबह–सुबह रसोइए ने स्वामी जी को कहा कि वह स्नान करने नीचे जा रहा है। स्वामी जी हैरान हुए। नहाने का चोर तड़के स्नान करने जो जा रहा था। जब कारण पूछा, तो जवाब मिला, 'आज दिवाली है।' उस समय स्वामी जी कुछ लिख रहे थे। उसे बीच में छोड़ते हुए वे बोले, 'चलो, आज मैं भी चलता हूं।' ऐसा लगा, मानो कुछ याद आ गया हो। वहां जाकर वे भिलंगना

की स्वच्छ धारा में उतरे। डुबकी लगाई और अदृश्य हो गए। अनुमान है कि उनका पैर फिसला और वो गहरे पानी की धारा में तेज भंवर में फंस गए। रसोइए ने शोर भी मचाया, लेकिन वहां कोई सुनने वाला नहीं था। कुछ देर बाद वो बाहर दिखाई दिए और भिलंगना की धारा के साथ बह चले। इस दिन वे पूरे 33 वर्ष के हुए थे। कुछ लोग इस घटना को आकस्मिक मानते हैं, तो कुछ के अनुसार, स्वामी जी ने पहले तो उस भंवर से निकलने का प्रयास किया, फिर भावी को स्वीकार करते हुए स्वयं को भिलंगना की पवित्र धारा में समर्पित कर दिया। उन्होंने अपनी मां 0को अपने जीवित शरीर को देने का वादा भी तो किया था, अर्थात् स्वामी जी ने स्वयं 'जल समाधि' ले ली। जबकि कुछ लोग मानते हैं कि उन्होंने जीवन से निराश होकर 'आत्महत्या' की थी। लेकिन यह बात तर्क की कसौटी पर, स्वामी रामतीर्थ जैसे महान व्यक्तित्व के स्वभाव को देखते हुए उचित नहीं लगती है। आत्महत्या तो जीवन से कुंठित व्यक्ति करता है। कुंठित वह होता है, जिसकी कामनाएं पूरी नहीं हो पातीं। जो समस्त कामनाओं से ऊपर उठ चुका है, उसे इस परिधि में नहीं बांधा जा सकता है, इस कसौटी पर कसकर नहीं देखा जा सकता है, उसका 'मन' सामान्य से अलग होता है।

स्नान को जाने से पहले जो वह लिख रहे थे, उससे उनकी अंतर्दशा का स्पष्ट रूप से अनुमान लगाया जा सकता है। उन्होंने लिखा था –

'ओ मौत! बेशक उड़ा दे इस एक जिस्म को, मेरे और शरीर ही कुछ कम नहीं। सिर्फ चांद की किरणें, चांदी की तारें पहनकर चेन से काट सकता हूं। पहाड़ों में नदी–नालों के वेष में गीत गाता फिरूंगा, आनंद के महासागर के लिबास में लहराता फिरूंगा। मैं ही मनोहर वायु और प्रातःकालीन समीर की मस्ती हूं। मेरी यह मनमौजी मूर्ति हर समय हलचल में रहती है।

साभार : swamiramtirthmission.com

मैंने कभी भी स्वामी राम तीर्थ से अधिक आत्म–साक्षात्कार प्राप्त महात्मा (नहीं देखा)। उनका संदेश आने वाली पीढ़ियों के लिए एक महान वरदान होगा।

मदन मोहन मालवीय

स्वामी राम तीर्थ भारतीय भावना के प्रतीक थे।

विनोबा भावे

स्वामी राम तीर्थ दिव्य आत्मा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

रमन महर्षि

आलेख



डॉ. शकुंतला कालरा

परम जिज्ञासु एवं ज्ञान पिपासु स्वामी रामतीर्थ

स्वामी रामतीर्थ जिज्ञासु और ज्ञान के पिपासु थे। उन्हांने भारतीय एवं पाश्चात्य सभी विद्धानों को पढ़ा और उनक सारभूत विचारों को न केवल ग्रहण किया वरन् आत्मसात भी किया और उन्हें जीवन में अपनाया भी। तुलसी, सूर, नानक, आदि भारतीय सन्त, शम्स तबरेज, मौलाना रूसी आदि सूफी सन्त, गीता, उपनिषद्, षड्दर्शन, योगवासिष्ठ आदि के साथ ही पाश्चात्य विचारवादी और यथार्थवादी दर्शनशास्त्र, तथा इमर्सन, वाल्ट ह्विटमैन, थोरो, हक्सले, डार्विन आदि मनीषियों का साहित्य इन्होंने हृदयंगम किया था। उनमें सीखने की प्रवृति इतनी प्रबल थी कि किसी को कुछ भी करता देखते थे तो उसे भी चुपके–चुपके ग्रहण कर लेते। इस संदर्भ में – स्वामी रामतीर्थ जी के जीवन से जुड़ा एक प्रसंग याद आ रहा है – सामान्यतः कुछ बड़े लोग आपस में एक दूसरे को कहते–सुने जाते हैं कि आप मुझे बच्चों की तरह क्या सिखा रहे हो? मैं तो बड़ा हो गया हूँ। "स्वामी रामतीर्थ एक बार जापान गये तो जहाज में उन्होंने एक बूढ़े व्यक्ति को देखा! समुद्र–यात्रा में समय तो लगता ही है, अतः उनकी दृष्टि उस बूढ़े कमज़ोर व्यक्ति पर रहती जिसे कम दिखाई देता था परंतु वह अपना समय चीनी भाषा सीखने में व्यतीत करता था। चीनी भाषा तो संसार की सबसे कठिन भाषा हैं इसे सीखने में दस–बारह साल तो लगते ही हैं और यदि अच्छी तरह बोलने का अभ्यास करना हो तो पन्द्रह साल भी लग सकते हैं। रामतीर्थ उस बूढ़े को देखते और सोचते कि यह बूढ़ा कब तक चीनी भाषा सीखेगा और सीखकर कब उपयोग कर पायेगा। वह बूढ़ा किसी की परवाह किये बिना भाषा सीखने में लगा रहता। रामतीर्थ उसे देखकर हैरान होते। एक बार वे उसके पास गये। पहले तो खड़े रहे, फिर

निकट पहुँच गये। बूढ़ा अपनी धुन में रमा हुआ था। उसकी दृष्टि रामतीर्थ पर पड़ी। स्वामी जी ने उससे पूछा – "आपकी कितनी उम्र होगी? शायद नब्बे तो होगी ही?" बूढ़े ने हँसते हुए उत्तर दिया – "तुम ठीक कहते हो मेरे भारतीय मित्र। मैं इसी वर्ष दिसम्बर में अपना इक्यानवेवां जन्मदिन मनाऊंगा।" स्वामी जी ने कहा – "इस कठिन भाषा को सीखने में आठ–दस साल लग जायेंगे, इसका उपयोग कब करेंगे? बूढ़ा हँसा और बोला – "तुम्हारी उम्र तीस बरस है। तुम मेरे पोते के समान हो परंतु विचारों से बूढ़े लगते हो। मैं तो जब तक जीवित हूँ, कुछ न कुछ सीखता ही रहूँगा। नया सीखने का आनंद ही अनोखा है।" स्वामी जी ने उसके पाँव छू लिये और कहा जो नया सीखता रहता है, वह चिर युवा है। देखा न, कितना अच्छा संदेश मिला बालकों को और बालकों के साथ बड़ों को। सीखने के लिए कोई आयु निश्चित नहीं होती।

ध्यातव्य है कि स्वामी रामतीर्थ वेदांत के हिंदू दर्शन के एक भारतीय शिक्षक थे। वे संयुक्त राज्य अमेरिका में व्याख्यान देने वाले हिंदू धर्म के पहले उल्लेखनीय शिक्षकों में से थे। स्वामी रामतीर्थ देश के महान संत, देशभक्त, कवि और शिक्षक भी थे, उनका पूरा जीवन प्रेरणादायक रहा है।

अपने जीवन के अंतिम समय में वे वापस हिमालय चले गए और वशिष्ठ आश्रम में रहने लगे। 17 अक्टूबर 1906 को उन्होंने गंगा में अपना शरीर त्याग दिया, उस समय उनकी उम्र मात्र 33 वर्ष थी। आज भले जी वो पार्थिक देह के रूप में वे हमारे बीच नहीं हैं किंतु उनका दर्शन, उनकी शिक्षाएं और उनके आदर्श आज भी सबके लिए प्रेरणा के स्रोत हैं। काया दो प्रकार की होती है एक देह रूप में जो नश्वर होती है और दूसरी यश रूप में जिसका कभी नाश नहीं होता, वह अनश्वर होती है। देह रूप में वह साथ नहीं है किंतु इनकी यश काया अमिट है। वो आज भी है और कल भी रहेगी।

एन.डी.–57, पीतमपुरा दिल्ली मो. 8287479455

स्वामी राम तीर्थ ने व्यावहारिक वेदांत को जिया। वे आत्मा के प्रकट अवतार हैं।

स्वामी शिवानंद

स्वामी राम तीर्थ भौतिक नियंत्रण से वास्तविक मुक्ति की आत्मा हैं। वे वायु की तरह मुक्त हैं।

स्वामी श्रद्धानंद

स्वामी राम तीर्थ के पास छाप है, जो सर्वव्यापी और सर्वव्यापी है। उन्हें समझना ही वेदांत को जीना है।

स्वामी चिन्मयानंद

स्वामी जी के जीवन-कला सूत्र

यदि आप अपनी सच्ची आत्मा या आत्मा के साथ एकत्व में रहते हैं, यदि आप हमेशा अपने भीतर के ईश्वर, अपनी आत्मा या आत्मा के संपर्क में रहते हैं, तो आप हर समय संप्रेरित रहते हैं। आपके साथ जो दोष है वह यह है कि आपका मन हर तरफ से सांसारिक चुम्बकों के संपर्क में आता है, सांसारिक आसक्तियाँ जो आपके आकर्षण हैं और आपको अव्यवस्थित कर देती हैं, आप अब व्यवस्थित नहीं रहते, विक्षिप्त हो जाते हैं।

जितना अधिक आप पाते हैं, उतना ही आप लालची, कंजूस और कम खुश होते जाते हैं। खुशी धन संचय में नहीं बल्कि केवल संतुष्टि में निहित है। इच्छाओं से ऊपर उठो और वे पूरी होंगी भीख मांगो तब उनकी पूर्ति तुमसे और दूर हो जाएगी। सभी स्वार्थी इच्छाओं को एक–एक करके मारकर और ओम का जाप करके मन को शुद्ध किया जा सकता है।

जो व्यक्ति सभी इच्छाओं से ऊपर उठता है वह हमेशा सहज और स्वाभाविक रूप से अच्छाई फैलाता है। जैसे एक फूल सुगंध देता है, या एक तारा प्रकाश फैलाता है, बिना इसके बारे में जाने भी। असली गरीबी धन की कमी में नहीं बल्कि अधिक से अधिक पाने की अतृप्त चाहत या लालच में है।

यदि आप आज प्रेरित नहीं हैं, तो इसका एकमात्र कारण यह है कि आप खुद को अलग–थलग या पर्याप्त रूप से अलग–थलग नहीं रखते हैं। आप सांसारिक वस्तुओं को अपने ऊपर चुम्बकित करने, सम्मोहित करने, उन्हें अपने साथ गलत और तेज खेलने देते हैं। यदि आप अपनी मूल शक्तियों और प्रेरणा को पुनः प्राप्त करना चाहते हैं, तो कुछ समय के लिए खुद को अलग–थलग रखें।

अपने आप को वास्तविकता में, दिव्यता में, ईश्वर में, सच्ची आत्मा में दफनाएँ। अपने आप को आत्मा में, सत्य में दफनाएँ। कुछ समय के लिए अकेले रहें, अपने दिन का कुछ समय वास्तविकता के संपर्क में रहने के लिए निकालें अपने आप को विलीन करें, ईश्वर में खुद को दफनाएँ। ऐसा करें और इन सांसारिक वस्तुओं से आपको जो खराब चुम्बकत्व और गलत सम्मोहन मिला है, वह आपको छोड़ देगा, आपका मन फिर से व्यवस्थित हो जाएगा। आप फिर से प्रेरित होंगे।

सत्य आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। इसे अपनाएँ और ब्रह्मांड के स्वामी बनें। सत्य है तत्त्वमसि –वह तुम हो।

अपने भीतर स्वर्ग को पहचानो, और एक ही बार में सारी इच्छाएँ पूरी हो जाएँगी, सारे दुख और पीड़ाएँ समाप्त हो जाएँगी।

स्वर्ग तुम्हारे भीतर है, सुख को इन्द्रिय–विषयों में मत ढूँढो समझो कि सुख तुम्हारे भीतर है।

कोई भी महान प्रतिभा जीवित प्रकृति के अलावा कभी भी वास्तविक प्रेरणा नहीं ले सकती। यदि तुम्हें ईश्वर के साथ एकत्व का एहसास करना है, तो पहले पूरे राष्ट्र के साथ अपनी एकता का एहसास करो। इस भूमि के भीतर हर प्राणी के साथ पहचान की इस तीव्र भावना को अपने शरीर के हर रेशे में धड़कने दो।

जब आप जीवन, प्रकाश और प्रेम के साथ अपनी एकता को जागृत करते हैं तो तुरंत ही केंद्रीय आनंद आपके भीतर से सुखद वीरतापूर्ण कार्य और ज्ञान और सद्‌गुण दोनों के रूप में फूटना शुरू हो जाएगा। यह संप्रेरित जीवन है, यह आपका जन्मसिद्ध अधिकार है।

आपको बस सभी की आत्मा के रूप में चमकना है। फिर ऊर्जा, जीवन गतिविधि स्वाभाविक रूप से आपसे विकीर्ण होने लगेगी। फूल खिलता है और सुगंध अपने आप निकलने लगती है।

किसी भी चीज को पाने का तरीका उसे खोना है।
मैं, आत्मा, मेरे लिए सब कुछ है,
शरीर, जहाँ भी जाता है, मुझे क्या परवाह है,
चाहे उसे इधर–उधर फेंका जाए,
या मरने के लिए छोड़ दिया जाए।
मैं स्वतंत्रता की आत्मा हूँ,

शरीर को, नमक–समुद्री लहर की तरह,
यहाँ–वहाँ या ऊपर और दूर फेंक दिया जाए!
आओ, हे सुख, आओ, हे दुख!
मेरे लिए तुम समान हो, एक जैसे, एक जैसे।
सूरज बगीचों को रोशन करता है,
साथ ही साथ बंजर भूमि को भी,
मैं भाग्य के सभी परिवर्तनों को समान
रूप से प्रकाशित करता हूँ।
स्वर्ग का विशाल सागर–नीला, शुद्ध और ऊँचा,
कभी प्रभावित नहीं होता, बादल उठते हैं
और मर जाते हैं।
जीवन या मृत्यु, और स्वास्थ्य या बीमारी,
मेरे अंदर, वाष्प की तरह उठते हैं, खेलते हैं
और समाप्त हो जाते हैं।
युवावस्था की चिकनी भौंहें, और उम्र की झुर्रियाँ,
मेरे ऊपर एक पृष्ठ की तरह सतही आकृतियाँ हैं।
सफलता या असफलता से
मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता,
क्योंकि मैं आजाद हूँ।
मैं आजाद हूँ, मैं आजाद हूँ!

सभी ग्रह, सूर्य, तारे और आकाश,
स्वतंत्रता की मेरी बिना डोरी वाली पतंग,
बहुत पीछे छूट जाती है
और ऊँची उड़ान भरती है,
पूरी छाती से मैं उल्लास के गीत गाता हूँ
मैं आजाद हूँ, मैं आजाद हूँ, मैं आजाद हूँ!
दुनिया, दुनिया मेरे लिए कुछ भी नहीं है।

यदि आप किसी वस्तु को साकार करना चाहते हैं, यदि आप कुछ पाना चाहते हैं, तो छाया का पीछा न करें। अपने सिर को छुएँ। अपने भीतर जाएँ। इसे समझें और आप देखेंगे कि तारे आपकी ही कृति हैं, आप देखेंगे कि प्रेम की सभी वस्तुएँ, सभी मोहक और आकर्षक चीजें बस आपकी ही परछाई या प्रतिबिम्ब हैं।

त्याग मन से होता है। हम वहाँ नहीं रहते जहाँ हमारा शरीर रहता है। हम वहाँ रहते हैं जहाँ हमारा मन रहता है। एकांत घर पर भी मिल सकता है या दूर–दराज के जंगल में भी नहीं।

यदि आप योग्य हैं, तो आपको इच्छा करने की आवश्यकता नहीं है। इच्छा की वस्तु आपके पास लाई जाएगी। यदि आप स्वयं को योग्य बनाते हैं, तो सहायता अवश्य ही आपके पास आएगी।

जिस क्षण संप्रेरणा होती है, उसी क्षण ''मैं जानता हूँ'' और ''मैं यह करता हूँ'' का विचार अनुपस्थित हो जाता है, यह हो ही नहीं सकता।

इस विषय पर महान गुरुओं ने यही कहा है। ''जो व्यक्ति स्वयं अपना स्वामी है, वह कविता के द्वार पर व्यर्थ ही दस्तक देता है।'' आप कविता लिखने की स्थिति में नहीं हो सकते, और साथ ही कविता का आनंद भी ले सकते हैं।

आप स्वयं अपने स्वामी हो सकते हैं और साथ ही कविता भी नहीं लिख सकते। कोई भी व्यक्ति लिखते समय इस तथ्य के प्रति सचेत नहीं हो सकता कि वह लिख रहा है। जब वह स्वयं चेतना बन जाता है, तब प्रेरणा का बिंदु पहुँच जाता है। कलाकार को अपनी कला के लिए त्याग करना चाहिए। जब आप सबसे महान कलाकार की भूमिका निभा रहे होते हैं, तो दूसरों की नजर में आप महान कलाकार होते हैं, लेकिन अपने नजरिए से आप महान नहीं होते। 'मैं कर रहा हूँ' का कोई विचार मौजूद नहीं होता, आप सर्व के साथ एक हो जाते हैं। अपने नजरिए से आप कोई कलाकार नहीं होते वहाँ व्याख्याकार, व्याख्या, लेखक, लेखन – सब एक हो जाते हैं। वहाँ सारे भेद मिट जाते हैं। यही प्रकृति है, प्रेरणा का रहस्य हैं।

❖

तीर्थ राम (स्वामी राम तीर्थ का पूर्व नाम), आप 'अद्वैत वेदांत' (गैर–द्वैतवाद) के पथ–प्रदर्शक बनने वाले हैं ।

स्वामी विवेकानंद

✳

स्वामी राम तीर्थ भारत के ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व की महानतम आत्माओं में से एक थे।

महात्मा गांधी

✳

वह जो सूर्य में पुरुष है, वह ही मैं हूँ

बड़ी आपदा आन पड़ी और संध्या करते समय परमेश्वर को झुठलाया नहीं, किन्तु सचमुच बार बार देहदृष्टि को छोड़कर जो यह ध्यान किया कि मैं तो सूर्य के प्रिय तेज वाला हूँ, मेरा तो वही धाम है,'' तो कहिये, चिन्ता जल न जायेगी ? प्रतिदिन तीन वक्त या दो वक्त या एक काल ही सही, सच्चे भाव के साथ जो इस तत्व में लीन हुए कि ''इन बुद्धियों का प्रेरक आत्मदेव हूँ, मैं तो वही हूँ जिसका तेज सूर्य–चन्द्रमा में चमक रहा है'' तो कहिये कौन सा अन्धेरा खड़ा रह सकता है ? विद्या पढ़ रहे हैं, या कोई बड़ा कार्य हाथ में है, और हर दिन एकान्त में बैठे बैठे और सब तरफ से वृत्ति को खींच, तेज के पुंज में अभेद भावना करते हैं, तो यारो ! दुहाई है अगर यश और कीर्ति खिच कर तुम्हारे आगे नृत्य न करें। क्या ''खलु क्रतु मयः पुरुषः'' (यह पुरुष संकङ्ल्पमय है)।

हाँ, जो लोग सदा के लिए निचले दर्जे को उपासना का पेशा बना लेते हैं वे अनर्थ करते हैं, क्योंकि अगर कोई प्रार्थना एक दफा भी सच्चे दिल से निकली थी तो कोई वजह नहीं कि चित्त की अवस्था बदल न गई होती और दिल का दरजा बढ़ न गया होता। यदि मन दूसरी क्लास (दरजे) में चढ़ गया, तो फिर पहली क्लास में रोना क्यों ? यदि नहीं चढ़ा तो यह प्रार्थना झूठ बकवास थी, अब झूठी बक–बक को पेशा बनाया चाहता है। उपासना का परम प्रयोजन यह था कि शरीर के स्नेह से चित्त मुड़े और आत्मा संग जुड़े। सच्चे उपासक को जब शरीर से हुआ अपराध याद आता है, तो वह 'अपने आप' से भागना चाहता है। हरि की शरण में आता है और आत्मा से तदाकारता पाता है। यदि ऐसा ध्यान एक दफा, दो दफा भी हो जाय तो फायदा है, कोई डर नहीं। परन्तु जो लोग ''पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः'' को प्रतिदिन पड़े ही रटते हैं उनको इस प्रकार की आवृत्ति न केवल देह से सम्बन्ध पक्का कर देती है, बल्कि पाप–संस्कार मन में दृढ़ जमा देती है। शुद्ध अन्तःकरण और सच्चे हृदय वालों से भेद–उपासना कभी हो ही नहीं सकेगी, जैसे एम.ए. क्लास के विद्यार्थी का जो मिडल क्लासवालों की पुस्तकों में मन कभी लग ही नहीं सकता।

कहानी

धोखा करोगे धोखा खाओगे

स्वामी रामतीर्थ

भारत में एक गृहस्वामी रहता था। बड़ा जालिम और अद्‌भुत चतुर और हँसोड़ा भी था। वह अपने नौकरों को बड़े हास्यात्मक ढंग से सताया करता था। एक बार नौकर ने गृहस्वामी अर्थात् अपने मालिक के लिए बहुत ही स्वादिष्ट भोजन बनाया। मालिक नहीं चाहता था कि नौकर उस भोजन में से कुछ भी भाग प्राप्त कर सकें। खाने की यह वस्तु रात को बनायी गयी थी। जब तैयार हो गयी, तो मालिक ने कहा, ''हम इसे अभी नहीं खाते। अब सो जाते हैं, सवेरे उठकर इसे खायेंगे।''

प्रातः उठकर यह भोजन खाने की योजना बनाने में मालिक की वास्तविक नीयत यह थी कि प्रातः समय उसे बहुत करारी भूख लगी होगी। रात को कुछ खायेगा नहीं, फलस्वरूप सवेरे उठते ही करारी भूख लगी हाने के कारण वह सारा भोजन स्वयं ही खा जाने की स्थिति में होगा। फलस्वरूप नौकर के लिए कुछ बचेगा नहीं। यह था वास्तविक इरादा उस मालिक का। वह चाहता था कि नौकर को केवल छिलकों, पापड़ या कणों से पेट भर लेना चाहिये। परन्तु अपना वह इरादा नौकर को क्यों बताने लगा था ? यह बात स्पष्ट रूप में नौकर से कहने की न थी। अस्तु यह इरादा नौकर से गुप्त रखकर मालिक ने उसे कहा, ''ठीक है, अब तुम आराम करो और सवेरे उठकर हममें से एक आदमी यह भोजन खा लेगा, जो सबसे मधुर व बढ़िया स्वप्न रात में देखेगा। यदि प्रातः समय पर तुमने सबसे सुन्दर स्वप्न देखा, तो यह सारा भोजन तुम्हीं को मिल जायेगा, अन्यथा यह सारा मेरे हिस्से में आयेगा और मैं इसे खा लूँगा और तुम्हें बचे–खुचे पापड़ या छोटे–छोटे कणों से ही अपनी सन्तुष्टि करनी होगीं।''

सवेरा हुआ।

मालिक और नौकर आमने–सामने बैठ गये। मालिक चाहता था कि पहले नौकर अपने स्वप्न का विवरण सुनाये। अस्तु नौकर ने कहा, ''श्रीमान् जी! आप मालिक हैं, आपको पहल मिलनी चाहिये। अच्छी बात यही है कि पहले आप अपना स्वप्न सुनायें और बाद को मैं सुना दूँगा।''

मालिक ने अपने मन में सोचा, यह गरीब नौकर, अनपढ़ और मूर्ख आदमी कोई बहुत बढ़िया स्वप्न नहीं गढ़ सकता, इसलिए मालिक ने स्वयं कहना आरंभ किया, ''अपने स्वप्न में मैं भारत का सम्राट था। मैंने स्वप्न में देखा कि समस्त यूरोपीय शक्तियाँ और समग्र अमरीकन शक्तियाँ भारत के सम्राट के शासनाधीन कर ली गयी हैं और इसलिए मैंने भारत के सम्राट रूप में सारे संसार पर शासन किया।''

आप जानते हैं, यह स्वप्न जालिम मालिक का था। सच्चा भारतीय यह नहीं चाहता कि राजा को अपने सामने एक जीता–जागता देवता समझकर उसकी पूजा करने की रीति को जारी रखा जाये। खैर, वह उस मालिक का स्वप्न था। वह स्वप्न में अपने–आपको भारत के राजसिंहासन पर सत्तारूढ़ पाता था और समस्त संसार का शासक समझता था और यह देखता था कि समस्त देशों के राजे उसके सामने हाथ बाँधे खड़े हैं तथा उसे नाना प्रकार के उपहार भेंट कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त उसने अपने स्वप्न में देखा कि समस्त देवता और ऋषि–मुनिगण उसके दरबार में लाये गये हैं और वे सब उसके बाएँ हाथ की ओर बैठे हैं या दाएँ हाथ की ओर बैठे हैं।

यह स्वप्न सुनाने के पश्चात् अब मालिक ने चाहा कि उसका नौकर अपने स्वप्न का वर्णन करे।

नौकर बेचारा सिर से लेकर पैरों तक काँपता, थरथराता हुआ बोल, ''श्रीमान् महोदय! मैंने कोई इस प्रकार का स्वप्न नहीं देखा।''

मालिक की बाछें हर्ष के मारे खिल उठीं। खुशी से फूले नहीं समा रहा था और सोचने लगा, बस अब वह स्वादिष्ट खाना सारे का सारा उसी के हिस्से में आ जायेगा। इधर नौकर ने अपने स्वप्न का वर्णन आरंभ करते हुए कहा, ''मैंने अपने स्वप्न में एक अत्यन्त भयंकर, कुरूप, महाकाव्य दानव देखा। वह दानव मेरी ओर बढ़ा। उसने हाथ में बिजली की–सी चमकती हुई तलवार पकड़ी हुई थी।''

''अच्छा।'' मालिक ने उत्सुकतापूर्वक पूछना आरंभ किया,''फिर क्या हुआ, इसके आगे क्या हुआ ?

नौकर ने कहा, ''श्रीमान् जी, वह दानव मेरे पीछे भागा और वह मुझे तलवार से मौत के घाट उतारने ही वाला था।''

मालिक के चेहरे पर मुस्कुराहट फैल गयी। यह आशाजनक चिन्ह था।

''उसने मुझे मार डालना आरंभ किया – वह मुझे कत्ल कर देने का प्रयत्न कर रहा था।'' नौकर ने कहा।

मालिक ने पूछा, ''और तुमने फिर क्या किया? तुम्हें कत्ल करने में उसका उद्देश्य क्या था ?'' नौकर ने बताया, ''श्रीमान् जी, वह कमबख्त यह चाहता था कि या तों मैं वह स्वादिष्ट खाना खा जाउँ या सिर कटवा लूँ।''

''तो फिर तुमने क्या किया ? मालिक ने पूछा।

"मैंने क्या किया," नौकर ने कहा, "मरता क्या न करता। मैं चुपचाप सीधा रसोईघर में चला गया और वहाँ जो कुछ पड़ा था, सब खा गया।"
मालिक ने कहा, "तो तुमने मुझे क्यों नहीं जगा दिया ?"

नौकर ने उत्तर दिया, "श्रीमान् जी आप तो सारे विश्व के सम्राट थे। आपके दरबार में महान् भव्य समारोह था, बड़े–बड़े अधिकारी जमा थे। वहाँ आदमी तलवारें खींचे, बन्दूकें ताने एवं तोपें गाड़े खड़े थे। यदि मैं आपके पास पहुँचने की कोशिश में आगे बढ़ता, तो वे पहरेदार मुझे मार डालते। मैं कितनी भयानक मुसीबत में फँसा हुआ था। इसलिए मुझको वह स्वादिष्ट भोजन खाने पर मजबूर होना ही पड़ा सरकार।"

जो व्यक्ति लालच के मारे किसी से धोखा करने का प्रयास करता है, वह स्वयं ही उस धोखे या अन्य किसी प्रकार के जाल में फँसकर हानि उठाता है। ऐसा प्रायः होता है, क्योंकि यह प्रकृति का नियम है।



ज्ञानी

निर्भयता, जीवन–मुक्ति, साम्राज्य, स्वराज्य किसी को कभी भी नहीं, नसीब होते सिवाय उस पुरुष के, जो अपने आपको संशय रहित होकर पूर्णब्रह्म, शुद्ध सच्चिदानन्द नित्य मुक्त जानता है, जो सर्वत्र अपने ही स्वरूप को देखता है। क्यों हिलेगा उसका दिल जो एक आत्मदेव बिना कुछ और देखता ही नहीं ? बड़ा भयानक घोर शब्द हुआ, पर सिंह क्यों डरे ? वह तो सिद्ध की अपनी ही गरज थी। लोहा तलवार के जौहरों से क्या भय माने ? वे तो उसी के तेज चमत्कार हैं। अग्नि अपनी ज्वाला से आप क्यों संतप्त हो ? तारे टूट पड़े, समुद्र जल उठे, हिमालय उड़ता फिरे, सूर्य मारे ठंड के बर्फ का गोला बन जाय, आत्मदर्शी ज्ञानवान् को क्या हैरानी हो सकेगी, जिसकी आज्ञा से कुछ भी बाहर नहीं हो सकता ?

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।

(ईश. उप.9)

कहानी

स्वार्थी हाथ

स्वामी रामतीर्थ

एक बार हाथ स्वार्थी बन गया और उसने भ्रातृ–भाव या भ्रातृ–प्रेम को उठाकर ताक पर रख दिया। एकता की भावना को तिलांजलि दे डाली और इस प्रकार सोचने लगा, "एक मैं हूँ कि दिन–भर काम करता हूँ और मेरे काम का सारा लाभ पेट महोदय साफ कर जाते हैं। या शरीर के अन्य अंग उस लाभ से मौज उड़ाते हैं। मैं कोई वस्तु नहीं खाता। मैं दाँतों और मुँह को अपने काम के लाभ नहीं उठाने दूँगा; उन तक कोई वस्तु खाने के लिए नहीं पहुँचाऊँगा। मैं सब चीजें स्वयं प्रयोग में लाऊँगा।"

इस तर्क को साकार करने के लिए हाथ ने योजना बना ली; कार्यप्रणाली तय कर ली। खाना मेज पर आ गया। खाने की चीजें हाथ को स्वंय खानी चाहिये थी। हाथ को इन सब चीजों का लाभ स्वयं उठाना था।

हाथ ने एक पिन उठाया, उससे अपने–आप में एक सुराख अर्थात् छिद्र बनाया और उसमें दूध डाला–दूध का टीका लगाया, ताकि मुँह को लाभ न पहुँच पाये। ऐसा करके हाथ ने अपने–आपको दूध क्या खिलाया, उलटा बीमार कर लिया। वह अपने –आपको लाभ न पहुँचा सका। खैर, एक और भी तरीका था स्वयं लाभ उठाने का। हाथ ने आपने आपको मोटा–ताजा करने के लिए शहद लेना चाहा। यह शहद कहाँ से आयेगा ? शहद की मक्खी से। फिर क्या था, हाथ ने शहद की मक्खी पकड़कर उससे अपने–आप पर डंक चलवाया। हाथ को बहुत–सा शहद मिल गया, उसने अपने–आप में शहद की मक्खी का जीवन डाल लिया। आप जानते हैं कि डंक मारने के बाद मक्खी मर जाती है। इधर मक्खी मर गयी और उधर हाथ महोदय फूलकर कुप्पा हो गये। मोटा जो होना चाहते थे, अस्तु हाथ मोटा हो गया। सारा शहद मानो हाथ ने अपने–आप में भर लिया था।

परन्तु यह क्या! हाथ को यह मोटापा महँगा पड़ा। कुछ लाभ पहुँचने के स्थान पर उसे पीड़ा तथा कष्ट अपना ऐसा मजा चखाने लगे कि हाथ को आटे–दाल का भाव याद आ गया।

इस प्रकार काफी कष्ट उठाने के पश्चात् हाथ के होश ठिकाने लगे और उसने कहा, ''मैं जो कुछ कमाता हूँ वह सब केवल मुझे ही नहीं मिलना चाहिये, या मुझे ही अपने पास नहीं रखना चाहिये, बल्कि मैं जो कुछ कमाता हूँ, वह सब पेट ही में जाना चाहिये और यहाँ यह रक्त द्वारा द्वारा प्रयोग में लाया जाना चाहिये, पाँवों द्वारा, हाथों द्वारा और शरीर के प्रत्येक अवयव द्वारा काम मे लाया जाना चाहिये और तभी, केवल तभी मुझे–मुझ हाथ को–लाभ पहुँचता है, अन्य कोई रास्ता या तरीका नहीं है।' इस प्रकार हाथ को यह विश्वास करने पर मजबूर होना पड़ा कि हाथ का अपने–आप या हाथ की आत्मा इस छोटे–से क्षेत्र में सीमित नहीं है।

हाथ अपने–आप उसी समय लाभ उठायेगा, जब कि सारे शरीर को लाभ पहुँचेगा। हाथ अपने–आप उसी समय लाभ उठा सकेगा, जब आँखों का अपने–आप लाभान्वित होगा। हाथ अपने–आप या आत्मा वही है, जो आँखों की आत्मा या अपने–आप है, जो कानों का अपने–आप है, जो सारे शरीर का अपने–आप अर्थात् आत्मा है।

इसलिए यदि आप हाथ की भाँति स्वार्थी बन जाते हैं, तो आपको भी इस प्रकार के स्वार्थ के परिणामों का मजा चखना होगा, जो हाथ ने चखा था। ईश्वरीय या प्राकृतिक विधान आपको अपनी जाति–मानव जाति–से अलग होने की आज्ञा नहीं देता। अतः ऐसे काम कीजिये, ऐसा जीवन–मार्ग ग्रहण कीजिये जिससे केवल आपने अपने–आप ही को नहीं सारी मानव जाति को लाभ पहुँचे। तभी आपको लाभ पहुँचेगा।

❖

स्वामी राम तीर्थ के कथन प्रसन्न हृदय की हर्षपूर्ण पुकार थे, जो उनके अपने अनुभवों के प्रति पूर्णतः आश्वस्त थे।

गुरु चरण सिंह

✵

स्वामी राम तीर्थ प्रेरणा के महान स्रोत थे..... उनके शब्द लोगों के दिलों में गहराई तक उतर जाते हैं।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

✵

स्वामी राम तीर्थ शंकराचार्य परंपरा के वेदांती थे। उन्होंने अपने शिल्प में अद्वैत वेदांत का प्रकटन किया। उनका जीवन और कार्य लोगों का मार्गदर्शन करता रहेगा।

डॉ. एस. राधाकृष्णन

✵

स्वामी रामतीर्थ - यू.एस. प्रेस की कुछ टिप्पणियाँ

- ऊपरी भारत के जंगलों से एक अद्‌भुत बुद्धि का व्यक्ति, एक पैगम्बर, एक दार्शनिक, एक वैज्ञानिक और एक पुजारी आया है।
- हिमालय का यह उल्लेखनीय ऋषि एक पतला, बौद्धिक युवक है, जो एक पुजारी के तपस्वी रूप में है। मैं कैसे जीता हूँ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए उन्होंने कल कहा, यह सरल है। मैं प्रयास नहीं करता। मैं विश्वास करता हूँ। मैं अपनी आत्मा को सभी मनुष्यों के लिए प्रेम की सद्‌भावना के साथ जोड़ता हूँ, जो सभी मनुष्यों को मुझसे प्रेम करने के लिए प्रेरित करता है और जहाँ प्रेम है, वहाँ कोई अभाव नहीं है, कोई दुख नहीं है।
- भारत से लोग अक्सर इस बंदरगाह (पोर्टलैंड) तक पहुँचते हैं। लेकिन शायद ही कभी ऐसी कोई शिक्षा, ऐसी व्यापक मानवीय सहानुभूति, ऐसे निःस्वार्थ इरादे यहाँ पहुँचे हों।
- डेनवर में, स्वामी राम तीर्थ ने अपने व्याख्यान में घोषणा की कि 'हर दिन एक नया साल का दिन है, और हर रात एक क्रिसमस की रात है।' यह सुनकर श्रोतागण चौंक गए और बहुत देर तक तालियाँ बजती रहीं।
- संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति उत्तर की ओर जाते हुए स्प्रिंग्स में कुछ देर रुके..... उन्होंने राम से अत्यंत शालीनता, प्रेम और प्रसन्नता के साथ भारत की ओर से अपील स्वीकार की। (20 मई, 1903)
- जब भी और जहाँ भी उन्होंने श्रोतागण या समूह को संबोधित किया है, उन्होंने उद्देश्यपूर्ण और प्रभावपूर्ण ढंग से बात की है और लोगों को उनकी तुच्छता से बाहर निकाला है।
- अमेरिका में उनका (राम का) मिशन दो गुना है। मुख्य रूप से यह अमेरिकियों को अपने देश और देशवासियों में रुचि दिलाना है..... उनका दूसरा उद्देश्य अपने दर्शन, मनुष्य की शाश्वत के साथ एकता के अपने गौरवशाली सुसमाचार का प्रसार करना है।

संक्षेप में और व्यापक रूप से कहें तो स्वामी राम तीर्थ उस स्थान पर खड़े हैं जहाँ दर्शन और व्यावहारिक विज्ञान मिलते हैं।

कहानी

युधिष्ठिर और कुत्ता

स्वामी रामतीर्थ

भारत के एक महाराजा थे। नाम था उनका युधिष्ठिर। वे सत्य के मार्ग के अडिग राही थे। कहा जाता है कि वे हिमालय की चढ़ाई चढ़ रहे थे, ताकि उनका शरीर बर्फ में पिघल जाय। किसी कारणवश वे अपने परिवार के साथ हिमालय की चोटियों पर आरोहण कर रहे थे।

कहा जाता है कि युधिष्ठिर ने की अर्थात सत्यता के मार्ग पर चल रहे थे। वे सत्य की खोज कर रहे थे। कदम–कदम निरन्तर आगे बढ़ रहे थे। उनका छोटा भाई उनका अनुसरण कर रहा था। इस छोटे भाई के पीछे दूसरा भाई और इसी प्रकार ठीक क्रम के अनुसार परिवार के अन्य लोग पीछे–पीछे आरोहण कर रहें थे। उनके भाइयों के पीछे उनकी पत्नी चल रही थी। वे स्वयं सबसे आगे थे। उनका मुँह लक्ष्य की ओर था। उनकी आँखें सत्य के ऊपर लगी हुई थीं।

उन्होंने देखा कि उनकी पत्नी, जो उनके पीछे आ रही थी, रो रही थी। वह लड़खड़ाकर गिर पड़ी थी। थक–टूटकर बेहाल हो गयी थी। उनका अनुसरण नहीं कर सकती थी और मृत्यु से जूझ रही थी। महाराज युधिष्ठिर ने उसकी ओर मुड़कर न देखा। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि कुछ ही फुट दौड़कर उनके पास पहुँच जाय, वहाँ से उसे अपने साथ ले चलेंगे –"ऊपर मेरे पास चलकर आओ, ऊपर मुझ तक पहुँच जाओ।"

उनकी पत्नी और ऊपर न चढ़ सकी। तीन फुट–मात्र फासला था, जो वह पार न कर सकी। वह उनसे पिछड़ गयी थी। उन तक ऊपर चढ़ जाने की उसमें हिम्मत रह नहीं गयी थी और वह पीछे भी न लौटी। सत्य से एक पग भी पीछे हटने की आज्ञा नहीं थी। महाराज युधिष्ठिर कभी कदापि एक पग तक पीछे नहीं हटते थे। उनकी पत्नी लुढ़क गयी थी, परन्तु उसकी खातिर महाराज सत्य के मार्ग से पीछे नहीं लौटे।

पिछले जन्मों में आपकी हजारों पत्नियाँ रह चुकी थीं और यदि आप भविष्य में भी जन्म ग्रहण करते रहेंगे, तो नहीं जानते आप कितनी बार फिर ब्याह करेंगे। आपके कितने सम्बन्धी पहले जन्म में थे और न जाने भावी जन्मों में और कितने सम्बन्धी बनेंगे। इन सम्बन्धों, रिश्ते–नातों की खातिर आपको सत्य से पीछे हटना नहीं होगा–नहीं हटना होगा। आगे बढ़िये, आगे बढ़िये। कुछ भी हो जाये, आपको पीछे नहीं हटना। और संसार की कोई शक्ति आपको पीछे हटा न सके। आप अपनी पत्नी से अधिक सम्मान सत्य का कीजिये। ईश्वर के लिए अधिक निष्ठा ग्रहण कीजिए। सत्य का सम्बन्ध सम्पूर्ण मानव–जाति से है। ईश्वर या सत्य निरन्तर–प्रति समय सम्बन्ध रखता है–अविरत प्रभावी है। इसका सम्बन्ध सदा–सर्वदा वर्तमान है–अनादि–अनन्त है। और आपके सांसारिक सम्बन्ध और रिश्ते ऐसे नहीं हैं–सर्वदा क्षण–भंगुर हैं।

इस नियम–इस विधान–को याद रखिये कि जो चीज आपके लिए वास्तव में अच्छी है–श्रेयस्कर है, निश्चय ही वह आपकी पत्नी या आपके बन्धुओं, साथियों के लिए भी वास्तव में मंगलकारी होनी चाहिए। यदि आप देखते हैं कि आपके लिए अपनी पत्नी से अलग रहना सचमुच ही श्रेयस्कर है, तो याद रखिये कि आपकी पत्नी के लिए आपसे अलग रहना वास्तव में श्रेयस्कर है। यह प्रकृत नियम है–अटल विधान है। वही एक ईश्वर या सत्य है जो आपके व्यक्तित्व की तह में रहता है, वही आपकी पत्नी के व्यक्तित्व के अन्तःस्थल में भी वर्तमान है।

महाराज युधिष्ठिर की पत्नी गिर पड़ी–चल बसी–परन्तु महाराज सीधे आगे बढ़ते गये। अपने भाईयों से उन्होंने कहा कि उनका अनुसरण करें। वे सब भाई महाराज के पीछे कुछ समय तक दौड़ते चले गये, परन्तु सबसे छोटा भाई उनके साथ और आगे चढ़ाई न चढ़ सका। वह लड़खड़ाने लग गया। थकान ने उसे दबोच लिया और गिरने ही को था कि चिल्ला उठा, "भैया! भैया युधिष्ठिर! मैं मृत्यु के भंवर में फँस गया हूँ। मुझे बचा लीजिये–बचा लीजिये।"

महाराज युधिष्ठिर ने अपने लक्ष्य से आँखें मोड़कर पीछे की ओर न देखा–सत्य से नजर हटाकर उन्होंने भाई की सुधि न ली। वे बढ़ते चले गए। उन्होंने केवल अपने छोटे भाई को आवाज दी, "हिम्मत बनाए रखो, साहस अपने भीतर बटोरकर मुझ तक ऊपर पहुँच जाओ, दो –तीन फुट ही का तो फासला है, तय कर लो, इस शर्त पर मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा। परन्तु मैं किसी तौर भी तुम्हें सँभालने या उठाने के लिए एक पग भी पीछे नहीं हटूँगा।"

युधिष्ठिर आगे बढ़ते गये। सबसे छोटा भाई चल बसा। कुछ समय के पश्चात् दूसरा भाई, जो रस्से की छोर पर था, चिल्लाया और गिरने ही वाला था। उसने सहायता के लिए पुकारकर कहा, भैया, भैया युधिष्ठिर! मेरी सहायता कीजिये, सहायता कीजिये भैया! मैं गिर चला हूँ। परन्तु भैया युधिष्ठिर ने मुड़कर न देखा वे आगे बढ़ते चले गये। इस तरह से भी सभी भाई मौत की गोद में सो गये हमेशा–हमेशा के लिए, परन्तु महाराज युधिष्ठिर एक पग भी पीछे न हटे–बढ़ते चले गये आगे–आगे। आगे बहुत दूर चले गये सत्य के मार्ग पर।

कहानी में बताया गया है कि महाराज युधिष्ठिर जब सत्य के शिखर पर पहुँचे–जब उन्होंने अपने लक्ष्य को पा लिया, ईश्वर स्वयं मूर्तिमान होकर उनके सामने प्रकट हुए–सत्य स्वयं मानव रूप धारण करके सामने उपस्थित हुए। जैसा कि हम बाईबल में पढ़ते हैं कि ईश्वर पेण्डुकी (फाख्ता) के रूप में प्रकट हुए, वैसे ही हिन्दुओं के शास्त्रों में हम व्यक्ति के सामने देवदूत के रूप या स्वर्ग के राजा (इन्द्र या विष्णु) के रूप में ईश्वर के प्रकट होने की कहानियाँ पढ़ते हैं।

अस्तु कहानी में कहा गया है कि जब महाराज युधिष्ठिर सत्य के शिखर पर पहुँच गये, सत्य मूर्तिमान होकर प्रकट हुआ और उनसे बोला कि वे सशरीर स्वर्ग में जाएँ–शरीर के साथ देवलोक में आरोहण करें। जैसा कि हम बाईबल में कई व्यक्तियों के जीवित रूप में स्वर्ग पहुँचने की कहानी पढ़ते हैं, उसी प्रकार युधिष्ठिर की कहानी में उनसे जीवित अवस्था में (सशरीर) स्वर्ग में आरोहण करने के लिए कहा गया है।

युधिष्ठिर ने जब अपने सीधे हाथ की दिशा में देखा, तो उन्होनें अपने साथ एक कुत्ते को पाया। महाराज युधिष्ठिर बोले, "इे ईश्वर, हे सत्य ! यदि आप मुझे उच्च्तम स्वर्ग में ले जाना चाहते हैं, तो इस कुत्ते को भी मेरे साथ ले चलिये। इस कुत्ते को भी मेरे साथ उत्कृष्टतम स्वर्ग में चलने दीजिये।"

मूर्तिमान ईश्वर या सत्य बोले, "राजा युधिष्ठिर यह नहीं हो सकता। कुत्ता उच्चतम स्वर्ग में प्रवेश पाने का अधिकारी नहीं है। कुत्ते को अभी कई योनियों में से गुजरना है। कुत्ते को अभी मनुष्य योनि में पहुँचना होगा। और सच्चा जीवन जीना होगा। एक पवित्र, शुद्ध, निष्कलंक मनुष्य का जीवन बिताना होगा। कुत्ता अभी इस अवस्था में नहीं पहुँचा है, तब इसे कैसे उच्चतम स्वर्ग में ले जाया जा सकता है। तुम तो उच्चतम स्वर्ग में सशरीर ले जाये जाने के योग्य एवं अधिकारी हो, परन्तु यह कुत्ता नहीं।"

इस पर युधिष्ठिर ने कहा, "हे सत्य, हे ईश्वर! मैं आपके केवल आपके ही लिए यहाँ आया हूँ, स्वर्ग के लिए नहीं–बैकुण्ठ के लिए नहीं। यदि आप मुझे उच्चतम स्वर्ग में ले जाना चाहते हैं और वहाँ सिंहासन पर बिठाना चाहते हैं, तो आपको मेरे साथ इस कुत्ते को भी ले जाना होगा–अवश्य ले जाना होगा। मेरी पत्नी मेरा साथ नहीं दे सकी। वह सच्चाई के मार्ग में डगमगा गयी। मेरा सबसे छोटा भाई मेरे साथ नहीं चल सका, वह भी सच्चाई के मार्ग में लुढ़क गया। मेरे दूसरे भाई भी मुझ तक न पहुँच सके, मुझे छोड़ गये। उन्होंने दुर्बलता के सामने हथियार डाल दिये। उन्होंने कामनाओं को छुट्टी दे दी कि वे उन पर अधिकार जमा लें। वे मेरे साथ कदम से कदम मिलाकर नहीं चल सके, परन्तु देखिये, यह अकेला कुत्ता यहाँ तक मेरे साथ आ गया है, यह कुत्ता देखिये ना। इसने मेरे साथ दुःखों, कष्टों को बाँटा है। इसने संघर्षों में मेरा साथ दिया है, इसने मेरी लड़ाइयाँ लड़ी हैं। इसने मेरे परिश्रम और वेदनाओं में हिस्सा लिया है–इस कुत्ते ने मेरा साथ दिया है। यदि यह कुत्ता मेरे साथ मेरी कठिनाइयों को बाँटता है–झेलता है, मेरी भीषण लड़ाइयों में –संघर्षों में शरीक होता है, तो यह मेरे स्वर्ग–मेरे देवलोक–सुखों का उपभोग क्यों न करे ?"

युधिष्ठिर ने अनुरोधपूर्वक दृढ़ शब्दों में कहा, "मैं आपके स्वर्ग या देवलोक में कदापि नहीं जाऊँगा, यदि आप स्वर्ग या देवलोक में इस कुत्ते को मेरा पूरा हिस्सेदार नहीं बनायेंगे। आपका स्वर्ग मेरे किसी काम का नहीं यदि आप इस कुत्ते को मुझे अपने साथ ले जाने की आज्ञा नहीं देंगे।"

मूर्तिमान सत्य या ईश्वर ने एक बार फिर युधिष्ठिर से कहा, "कृपया मुझे ऐसा करने को न कहिये, यह मत कहिये कि इस कुत्ते को आपके साथ स्वर्ग में ले जाया जाये।"

परन्तु युधिष्ठिर ने कहा, "दूर हो जाइये ब्रह्मा! आप सत्य या ईश्वर के मूर्तिमान स्वरूप नहीं है, आप कोई दानव हैं। आप ईश्वर या सत्य नहीं हो सकते। क्योंकि यदि आप सत्य हैं, तो अपने सामने अन्याय की कोई बात क्यों होने देते हैं ? क्या आप इस बात की ओर ध्यान नहीं देते कि यदि आप मुझे तो स्वर्ग के विशेष सुखों के उपभोग की आज्ञा देते हैं और इस कुत्ते को उस उपभोग में मेरा साथ नहीं बनाते, तो आप कुत्ते के प्रति अन्याय का व्यवहार करते हैं, जिसने मेरे दुःखों, कष्टों में हिस्सा बाँटा है ? यह बात ईश्वर या सत्य के लिए शोभा की बात नहीं—यह उनकी शान के अनुरूप नहीं है।"

युधिष्ठिर का यह अजेय हठ देखकर मूर्तिमान ईश्वर या सत्य अपने प्राकृत रूप में प्रकट हो गये और एकदम उसी समय यह कुत्ता कुत्ते के रूप में न देखा गया, प्रत्युत् इस कुत्ते के स्थान पर सर्वशक्तिमान् ईश्वर को स्वयं उनकी सम्पूर्ण महिमा—श्री के सहित साक्षात् देखा गया।

वास्तव में महाराज युधिष्ठिर की परीक्षा ली गयी थी। वे अंतिम परीक्षा में सफल हो गये। वे चरम परीक्षा की कसौटी पर शत—प्रतिशत पूरे उतरे।

यह है तरीका जिससे आपको सत्य के मार्ग पर चलना है। यदि आपका प्रिय से प्रिय सम्बन्धी, अत्यन्त घनिष्ठ बन्धु, सखा आदि कोई भी व्यक्ति सत्य के मार्ग में आपके साथ कदम मिलाकर नहीं चल सकते, तो आप उनकी ओर प्रियजन या घनिष्ठ बन्धु के रूप में पीछे मुड़कर नहीं देखिये और यदि कुत्ता इस सत्य—मार्ग में आपका साथ देता है, तो इस कुत्ते को अपना निकटतम बन्धु, प्रियतम सम्बन्धी समझिये। इस पर आप उन लोगों को अपना मित्र, अपना सगा—सम्बन्धी बनाइये, जो सत्य—निष्ठा के सिद्धान्त पर आपके साथ पूरे उतरते हैं। जो सत्य के पालन में आपका समर्थन करते हैं—साथ देते हैं। आप अपने लिए दोस्तों या बन्धुओं का निर्वाचन इस सिद्धांत पर मत कीजिये कि वे आपकी बुरी प्रकृति का समर्थन करते हैं—उसमें आपका पक्ष लेते हैं। यदि आप इस सिद्धांत पर अपने मित्रों का चुनाव करते हैं कि वे उसी प्रकार की बुरी व खराब प्रवृत्तियाँ रखते और उपभोग करते हैं, जैसे तुम करते हो, तो समझ लीजिये, आपके दुःखों कष्टों, विपत्तियों की कोई सीमा कोई ठिकाना नहीं रहेगा।

यदि आप विपत्तियों व दुःखों से मुक्त होना चाहते हैं—यदि आप परम आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं—जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करना चाहते हैं—तो सत्य का मार्ग ग्रहण कीजिये, क्योंकि सत्य ही ईश्वर—स्वरूप—सच्चिदानंद स्वरूप है। इस मार्ग पर सदा चलते रहिये, यह मत देखिये कि कोई आपका साथ देता है या नहीं।



स्वामी रामतीर्थ के प्रेरणास्पद संदेश

- वेदांत दर्शन को फैलाने का सबसे अच्छा तरीका है इसे जीना।
- इच्छाओं से ऊपर उठो, और वे पूरी हो जाएँगी।
- अमर वह सच्चा देवत्व है जो आप हैं।
- नियम यह है कि आपको शुद्ध रहना चाहिए। अशुद्धता को आश्रय दें तो आपको इसके परिणाम भुगतने ही होंगे।
- सत्य उसे पकड़ो, उसे समझो, उसे अनुभव करो, उसे जियो।
- स्वर्ग तुम्हारे भीतर है, सुख को इन्द्रिय–विषयों में मत खोजो समझो कि सुख तुम्हारे भीतर है।
- ईश्वर तुमसे अलग नहीं है वह ईश्वर इस स्वर्ग या उस नरक में नहीं है, बल्कि तुम्हारे अपने भीतर है।
- अपने स्वभाव से तुम स्वतंत्र हो तुम अपनी गुलामी की अवस्था में अपने आप को भूल गए हो। एक राजा सो सकता है और खुद को भिखारी पा सकता है वह स्वप्न देख सकता है कि वह एक भिखारी है, लेकिन यह किसी भी तरह से उसकी वास्तविक संप्रभुता में बाधा नहीं डाल सकता।
- तुम्हारे आत्म–सम्मान और महिमा सम्राटों के वैभव को हास्यास्पद बना देती है।
- हम पूरी दुनिया पर अधिकार नहीं कर सकते, और अगर हम उसे पा भी लें, तो क्या होगा? पूरी दुनिया को पा लेना और अपनी आत्मा को खो देना – क्या होगा? जब हम स्थिर तारों से निपटते हैं, तो तुम्हारी यह पृथ्वी खगोलीय गणनाओं में बस एक बिंदु है। इस पृथ्वी को एक स्थिति के लिए गणितीय बिंदु के रूप में माना जाता है, लेकिन परिमाण के रूप में नहीं।
- वास्तविक आत्मा, सच्चा ईश्वर शब्दों और मन की पहुँच से परे है।
- ईश्वर की आँखों में धूल झोंकने की कोशिश करो और तुम खुद अंधे हो जाओगे।
- सच्ची वास्तविकता, असली शक्ति को पहचानो, जो तुम हो तुम अनंत हो, सभी खतरों और कठिनाइयों से ऊपर।

श्रुति

वेद-दर्शन

स्वामी रामतीर्थ

उपासक और भक्त होने की पदवी हमको तो नसीब नहीं। हमने तो सच्चा उपासक सारी दुनिया में एक ही देखा है। बाकी भक्तों,. ऋषियों, मुनियों, पीरों पैराम्बरों का "प्रेममय उपासक" कहलाना एक कहने ही की बात है। वह सच्चा आशिक और उपासक कौन है, जिसको लोग उपास्य देव कहते हैं, क्योंकर? प्रेमी जार (यार) की तरह छिप–छिप कर छेड़ता है। शनैः शनैः वृत्ति की कन्नी (चित्त का आँचल) खींचता है। अनेक प्रकार के भेष बदल कर, रंग रूप धारण करके स्वाँग भरके परदों की ओट में नयनों की चोट मार जाता है। जब मन अनात्म पदार्थों में कहीं लग जाता है तो हाँ! फिर उसके मान करने (रूठने) का क्या कहना ? भृकुटि कुटिल किये कैसा कैसा कोप दिखाता है। जब वृत्ति मार्ग में कही रुक जाय, तो चुटकियाँ भरता है। दम तो लेने नहीं देता, आराम तो नाम को भी और कहीं नहीं मिलने पाता, सिवाय एक मात्र उस राम की निष्काम शय्या के।

हे प्यारे! अब आशिक होकर रूझंना (मचलना) कैसा ? अब रस चखा कर नटते हो ? हे प्राणनाथ! इधर देखो! वह दुष्ट शिशुपाल आ पड़ा, छीन कर ले चला तुम्हारी हक्कानी (ईश्वरत्व) को। कुछ क्रोध, शर्म भी है ? यह वक्त तो मान करने का नहीं, आओ!

त्वमसि ममभूषणां, त्वमसि ममजीवनं, त्वमसि ममजलधिरत्नं।
भवतु भवतीह मयि सतत मनुरोधिनस्तत्र ममहृदयमतियत्नं।।

(जयदेव)

आप ही मेरे भूषण है, आप ही मेरे जीवन हैं आप ही मेरे समुद्रोत्पन्न रत्न है। निरन्तर मेरे ऊपर कृपा करने वाले आप में मेरा हृदय बढ़े यत्न के साथ जग जावे।

सूर्य को बाहर तेज (प्रकाश) दे दिया मुफ्त में। हमको आठों पहर निजानन्द देते कंगाल तो नहीं हो चले ?

हे प्रभो ! अब तो मुक्त भाव दो–दो बातें नहीं निभ सकतीं। खाने–पीने, कपड़े–कुटिया का भी ख्याल रक्खूँ और दुलारे का भी मुख देखूँ। चूल्हे में पड़े पहनना, खाना, जीना, मरना। क्या इनसे मेरा निर्वाह होता है ? मेरी तो मधुकरी हो तो तुम, कमली हो तो तुम, कुटिया हो तो तुम, औषधि हो तो तुम, शरीर हो तो तुम, आत्मा हो तो तुम। शरीरादि को रखना चाहते हो तो पड़े रखो। अकर्ता बने रहे हो, निकम्मे बैठे क्या करते हो ? करो सेवा।

आँखें लगा के तुझसे न पलके हिलायेंगे।
देखेंगे खेल हम, तुम्हें आगे नचायेंगे।।

सोम व्रते तव मनस्तनूषु विभ्रतः।।

(यजुर्वेद)

हे वाचस्पते! वेद स्वरूप वाणी के प्रातः ब्रह्म अभिमत फल प्रदान के लिए अनुग्रह बुद्धि से युक्त हो, बारम्बार मेरे पास आइये। हे ग्राम–पश्वादि रूप धन के स्वामिन्! आप में ग्रामादि अनेक फल देने की शक्ति है, इसलिए इच्छित नाना प्रकार के फलों के सम्पूर्ण दान से निरन्तर हम लोगों को सुख दीजिये। आपसे दिया हुआ ग्रामादि मेरे ही पास रहे और गुरु से पढ़ा हुआ वेद शास्त्रादि विस्मरण न हो, इसलिए उसके धारण करने के लिए मेधा भी दीजिए।

हे वाचस्पते! इसी साधक जन में दोनों अर्थात् सुनी बात को धारण करने वाली मेधा और नाना प्रकार के भोगों के कारण ग्रामादि सम्पत्ति को विस्तीर्ण कीजिये। जिस प्रकार धनुष की प्रत्यंचा धनुष की कोटियों (कोनों) को खींचती है, उसी प्रकार मुझे दोनों वस्तुओं को दीजिये, अर्थात् वे न आना चाहें तो बलपूर्वक मेरे पास पहुँचाइये। और हे विधाता! दिये हुए समस्त फल को मुझे में दृढ़ कीजिये और मुझको श्रुत अर्थात् मेधादि को मुझमें संयोइए।

समीप में आह्वान किया गया (बुलाया गया वाचस्पति) वेद शास्त्रादि का पालक, मेधा इत्यादि चाहने वाले हम लोगों को चाहे हुए फल देने की अनुज्ञा करे और उसकी अनुज्ञा से प्राप्त मेधा से हम वेद शास्त्रादि को प्राप्त होवें और उस वेद शास्त्रादि से हमारा कभी वियोग न हो। अर्थात् वेद शास्त्रादि से हम सर्वदा युक्त रहें।

इसमें वाच (वाणी) के पति (वाचस्पति) रूप ब्रह्म का ध्यान है। जब तक लोहा अग्नि में पड़ा रहे, अग्नि के गुण उसमें आ जाते हैं। इस तरह जब बुद्धि वाच (वा मन) के पति सर्वव्यापी चैतन्य अभेद रहे, तो उसमें विचित्र शक्ति कैसे न आ जायेगी ?

कोई भी मन्त्र हों, उनको खाली पढ़ा या गाया ही नहीं छोड़ना, किन्तु पढ़कर उनके भावार्थ में मन को लीन और शान्त होने देना चाहिए ?

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदुसुप्तस्थ तथैवेति।
दूरंगमंज्योतिषां ज्योतिरेकतन्मेमनः
शिव संकल्पमस्तु।।

क्या जाग्रत, क्या स्वप्न, क्या सुषुप्ति, तीनों दशा में मेरा मन किसी और विचार की तरफ न जाने पाये, सिवाय शिवरूप आत्मचिन्तन के। चलते, फिरते, बैठे, खड़े मेरा मन शिवरूप सत्यस्वरूप आत्मा के सिवाय और कोई चिन्तन न करने पाये।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदिवस्थीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्

यहाँ पर पहले तो यह देखना है कि 'धीमहि' ओर 'नः' दोनों बहुवचन हैं। एकान्त में अकेले तो इस ब्रह्मगायत्री का ध्यान है और "हम ध्यान करते हैं" "हमारी बुद्धियाँ" ऐसा क्यों ? "मैं ध्यान करता हूँ" और "मेरी बुद्धि" क्यों नहीं लिखा ? इसमें वेद की आज्ञा है, कि प्रथम तो देहाभिमान रूप स्वार्थ दृष्टि और परिच्छिन्नता का परित्याग करना है। सब देश के लोगों को अपना स्वरूप जान कर, सब शरीरों को अपना शरीर मान कर, सब के साथ एक होकर अभेद बुद्धि के साथ यह ध्यान करना है:—

"वह सविता देव जो हमारी बुद्धियों को चलाता है, उसके प्रिय (पूज्य) तेज (स्वरूप) का हम ध्यान करते हैं।" "प्रचोदयात्" में महीधर और सायणाचार्य ने व्यत्यय माना है और यह ठीक भी है। सूर्य रूप सविता देव को हमारी बुद्धियों का प्रेरक माना हैं। वही जो सूर्य को प्रकाश करता है वही बुद्धियों को प्रकाशता है, वही आत्मा है।

"योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्"।।



यज्ञ, तीर्थ, मेले, मंदिर, न्यायालय, मठ, भोजनालय, विवाहोत्सव, श्मशान—यात्रा, सभा, सामाजिक वार्षिकोत्सव, तथा आजकल के सम्मेलन और राष्ट्रीय सभाओं के जलसे, ये सब भारतवर्ष में लोगों के एकत्रित होने के स्थान हैं। इसी प्रकार पश्चिम में गिरजाघर, होटल, प्रदर्शनी, पर्यटन, विश्वविद्यालय, सार्वजनिक व्याख्यान, क्लब और राजनैतिक सम्मेलन इत्यादि साधारणतः लोगों को एकत्र होने का अवसर देते हैं परन्तु ऐक्यता—वर्धक शक्ति विशेष उन जमघटों में होती है जिनमें हम सात्विक भाव से मिलते हैं और जहाँ हम ऐक्यता के वृक्ष को प्रेम के पवित्र जल से सींचते और दृढ़ करते हैं। चिरस्थायी ऐक्यता वहीं उत्पन्न हो सकती है जहाँ अन्तकरण एक होते हैं। केवल शरीरों के मेल से कोई उत्साह जनक परिणाम नहीं उत्पन्न होता, वरन् कभी—कभी उल्टे ईर्ष्या, वैमन्यस्य आदि का जन्म होता है। खींच—खाँच करके केवल बाहरी ऐक्यता पैदा करने की कोई आवश्यकता नहीं। जहाँ अन्तःकरण की ऐक्यता नहीं होती, वहाँ की मैत्री उन विस्फोटक पदार्थों के मिश्रण से अधिक भयंकर होती है जो एकत्र होते ही धड़ाम से फट जाते हैं।

शान्ति आश्रम, मथुरा में दिया व्याख्यान

स्वामी रामतीर्थ

अंग्रेजी में 'धर्म' को 'रिलीजन' कहते हैं। व्युत्पति के अनुसार 'रिलीजन'' शब्द का अर्थ है ''पीछे बांधना'' अर्थात् जो हमें पीछे ले जाकर हमारे आदि धर्म स्वामी रामतीर्थ से बाँध देता है, वही धर्म है।

प्रश्न : हमारा मूल या आदि स्रोत क्या है ? वह कौन सी शक्ति है, जिसके वशवर्ती होकर मन सोचता है, आँख देखती है और प्रकृति अपना काम करती है ?

उत्तर : वह जो मन बुद्धि, नेत्रों तथा अन्य ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा अनुभव में नहीं आता, किन्तु मन–बुद्धि, नेत्रों एवं अन्य इन्द्रियों को अपने अपने काम में प्रेरित करता है, ब्रह्म कहलाता है। वह हमारे अनुभव या विचार का विषय नहीं हो सकता। मन–बुद्धि और वाणी को उस पर विचार करते समय घबराकर पीछे लौटना पड़ता है।

हमारे हाथ का चिमटा प्रायः सभी वाह्म वस्तुओं को पकड़ सकता है, किन्तु क्या चिमटे के लिये लौटकर हमारे हाथ की उन उंगलियों को पकड़ना सम्भव है, जो चिमटे को सम्भाले हुए हैं। इसलिये मन और बुद्धि से यह किसी प्रकार आशा नहीं की जा सकती कि वे उस अज्ञात, अचिन्त्य तत्व को जान सकेंगे जो स्वयं उनका मूल स्रोत है।

ऐसी स्थिति में हमें 'धर्म' और कर्मकाण्ड का भेद समझना होगा और उसमें से रुढ़िजन्य प्रथाएं पृथक करनी होंगी। तब हम देखेगे कि 'धर्म' वास्तव में एक योगिक विधान है, जिसके अनुसार मन और बुद्धि वाह्म जगत से पीछे लौटकर उस अज्ञात–अचिन्त्य मूल स्रोत में लय हो जाता है।

जब कोई ईसाई भक्त या पवित्र–हृदय मुसलमान ईश्वर की प्रार्थना के

लिए तैयार होता है तब उसके हाथ अपने आप अज्ञात रूप से ही ऊपर उठ जाते हैं मानों वह किसी ऊपर के, अपने से बाहर के, अज्ञात तत्व को पकड़ने की चेष्टा कर रहा हो। हिन्दू जब भक्ति में लीन होता है अथवा समाधि में बैठता है तब अपने आप उसकी आंखें बन्द हो जाती है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वह अदृश्य, अज्ञात तत्व हमारे भीतर है, जिसमें हमारा मन और बुद्धि डूबना चाहती है।

धर्म अनेक नहीं, एक है; वही हिन्दुत्व, इस्लाम और ईसाईयत की जान है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो इस धर्म का अर्थ है उस अज्ञात का, मन–वाणी से अगोचर का साक्षात्कार, जहाँ न जाति–पाँति रहती है और न रंग–रूप, जहाँ न मतमतान्तर रहते हैं, न सिद्धान्त और उपसिद्धान्त, न मन–वाणी, न देश–काल और न कार्य–कारण, न इहलोक रहता है और न कोई अन्य काल्पनिक परलोक, जहाँ ये सारी बातें और उनके अन्तर्गत जो कुछ सम्भव हो सकता है, वह सब कुछ साफ हो जाता है, सब कुछ लीन हो जाता है, जहाँ शब्द की पहुंच नहीं हो सकती उसका साक्षातकार ही धर्म है। क्या इसमें कोई रहस्य है ? नहीं, बिल्कुल नहीं।

जिस मनुष्य ने सचमुच कभी धार्मिक अनुभव प्राप्त किया हो, वह अपने उस क्षण की याद करे जिसे समाधि की अवस्था कहते हैं और फिर बतावे कि उस घड़ी में अपने–पराये की, संसार की यहाँ तक कि ईश्वर की भी याद रहती है या नहीं। यथार्थ साक्षात्कार की अवस्था में मैं और तू का प्रपंच, द्रष्टा ओंर दृश्य का भेद काफूर हो जाता है। उपर्युक्त आदर्श को प्राप्त कराने वाले किसी भी वैधानिक प्रयास को राम धार्मिक समझता है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि ऐसे रहस्यमय लक्ष को प्राप्त करने की क्या आवश्यकता है। किन्तु इस प्रश्न का उत्तर ढूँढने के पहले आइये, हम इस बात की जाँच करें कि मनुष्य के हृदय को आकर्षित करने वाले मुख्य आदर्शों की जैसे ज्ञान, वीरता, प्रेम, सुख आदि की प्राप्ति साधारणतः हमें कैसे होती है।

1. साधारणतः हम ज्ञान से उन बातों या तथ्यों का अर्थ लगाते है, जो हमें बाह्य उपकरणों जैसे पुस्तकों या शिक्षकों के द्वारा प्राप्त होते हैं। और उस मनुष्य को हम बड़ा विद्वान समझते हैं जिसने अपने समय के सुप्रसिद्ध एवं विद्वतापूर्ण ग्रन्थों से अपने मस्तिष्क को भर लिया हो अथवा उन्हें कंठाग्र कर लिया हो। हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं कि हमें भूतकाल की सफलताओं की अवहेलना न करना चाहिए वरन् सावधानी से उनका अध्ययन करना चाहिए किन्तु हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि वास्तविक शिक्षा तो उस समय प्रारम्भ होती है, जब मनुष्य सभी प्रकार की बाह्य सहायताओं से मुँह मोड़कर अपने अन्तर के स्रोत की ओर अग्रसर होता है। बस, ऐसी दशा में एक से एक नये विचार उसके हृदय से निकलते हैं, वह मानो मौलिक विज्ञान का प्राकृतिक चश्मा बन जाता है। न्यूटन तथा अन्य सत्यान्वेषकों ने अनेक लाभदायक आविष्कारों का सम्पादन किया है। आप यह बतलाइये कि ये सच्चाइयाँ जो उनके पहले क्या मनुष्य को प्राप्त न थीं ? वे किन पुस्तकों से प्राप्त हुई थीं ? इन बातों को उन्होंने कहाँ से, किस गुरु से सीखा था ? सच्ची बात तो

यह है कि मनुष्य–जाति के इन उद्धारक महापुरुषों की शिक्षा या जिज्ञासा अज्ञात रूप से ही हमारी उस वास्तविक आत्मा तक पहुंच गई, केवल जिसके द्वारा समस्त अनसुना सुना जाता है, न जाना हुआ जाना जाता है, न सोचा हुआ सोचा जाता हैं। उसके द्वारा प्रकाश अपने आप फूट निकलता है जिसका मन एकान्त होता है। एकाग्र होने का अर्थ है। कि वह अपने क्षुद्र अहंकार (अहम्) को भूल जाता है, उसे अपने तन –मन बुद्धि आदि किसी की सुधि नहीं रहती, ऐसी दशा छा जाती है, जहां संसार, अहमवृत्ति और उसका सारा पसारा अज्ञात और अचिन्त्य परम तत्व में लीन हो जाता है। बस, ऐसी स्थिति प्राप्त होने पर ही, उसके पहले कदापि नहीं, सच्चाईयों की वर्षा होने लगती है, नये नये आविष्कार प्रकट होने लगते हैं, ज्ञान की धारा फूट निकलती है। प्रकृतिदेवी के नूतनतम रहस्य सामने दृष्टिगोचर हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ऊपर धर्म का जो स्वरूप बतलाया गया है, उसे जिस योगिक साधन का रूप दिया गया है, संसार की समस्त सच्चाइयां, शोध, आविष्कार, सिद्धान्त और उपसिद्धांत–सबके सब प्रकृततः उसी स्थिति से प्रकट होते हैं। जहाँ कवि एक बार उस समाधि–चेतन की अवस्था में पहुंचा नहीं कि एक से एक श्रेष्ठ भावनायें उसकी काव्य–धारा से फूटी नहीं। चाहे कवि हो या दार्शनिक या गणितज्ञ–जो भी अपने प्रत्यक्ष अहम् भाव को भूल जायेगा, वही जटिलतम समस्याओं का आश्चर्यमय समाधान करके दिखा देगा। जब कोई समस्या हल हो जाती है, कोई आविष्कार हाथ आ जाता है तब हमारी यह प्रत्यक्ष 'मैं' उसका श्रेय लेने के लिए उत्सुक हो उठती है। किन्तु ध्यान रहे कि जब तक हमारे अन्तः करण में यह अधिकार चाहने वाली, स्वत्व जमाने वाली 'मैं' का अस्तित्व विद्यमान रहता है तब तक कभी किसी प्रकार का आविष्कार नहीं हो सकता। केवल उसी समय जब 'मैं' का लोप हो जाता है, धर्म की वह दशा प्राप्त हो जाती है जिसका संकेत ऊपर किया गया है, केवल तभी सफलता और ज्ञान का प्रादुर्भाव होने लगता है।

2. आओ, अब किसी रणक्षेत्र में चलकर किसी वीरात्मा का अध्ययन करें। वह अपनी अलौकिक शक्ति से मानो पागल सा हो रहा है, वह हजारों की परवाह नहीं करता, उसे अपने शरीर की सुधि नहीं हैं। सचमुच इस समय वह न शरीर है और न मन, यहाँ तक कि वह बाह्य संसार से भी बेखबर है। है केवल जोश ही जोश, उसके शरीर का प्रत्येक रोयाँ पुकार–पुकार कर कह रहा है कि इस समय वह उस परम आत्मा में डूबा हुआ है, जो शरीर–मन और समस्त संसार के तल में सदैव विद्यमान रहता है। देखने वाले उसके दुर्जय साहस और असीम वीरता को देखकर दंग है, जो न जाने कहाँ से उसके द्वारा प्रकट होकर उनकी आँखों को बिजली के समान चकाचौंध कर रही है, किन्तु यदि योद्धा से स्वयं उसकी वीरता का पता पूछा जाय तो उसका वह दुर्धर्ष शौर्य उसको उसी प्रकार अज्ञात होगा, जैसे समाधि में, धर्म के वास्तविक स्वरूप में, पर्दे के पीछे रहने वाली सर्वात्मा में सब कुछ लीन रहता है।

3. प्रेम का शब्द कितना प्यारा है! प्रेमी से सभी प्रेम करते हैं, कौन भला सच्चे भक्त की भक्ति नहीं करता! सच्चे हिन्दू को अधिकांश अवसरों पर

भक्ति का ही एकमात्र सहारा रहता है। कुछ ऐसी श्रेष्ठ आत्मायें होती हैं, जो ईश्वर की भक्ति के लिए, भगवान् की सेवा के लिए, अपना सब कुछ, अपना सर्वस्व सहर्ष बलिदान करने के लिए तत्पर रहती हैं। आइये, हम इस भक्ति के मूल के स्रोत की शोध लगायें।

चैतन्य महाप्रभु जैसे आदर्श भक्तों की ख्याति इसी लिए हुई कि प्रार्थना के समय वे असाधारण रूप से समाधिस्थ आत्मविह्वल हो जाते थे। और यहां यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि जिस हृदय में ईश्वर–भक्ति इतने जोर से उमड़ती है उसके लिए लोक–लाज अथवा सांसारिकता का कोई प्रश्न नहीं रहता। वह अपने क्षुद्र अहम् के बन्धनों से सर्वथा मुक्त हो जाता है। किन्तु ऐसे दिव्य पुरुषों की बात छोड़ दीजिये, उन पुरुषों को देखिये, जिन्हें सांसारिक पदार्थों से ही सच्चा प्रेम करने का सुअवसर मिला है, वे भी अपने अनुभव से बतला सकते है कि प्रेम की परमावधि में न प्रेमी रहता है और न ही प्रेमिका। निस्संदेह यह विचित्रता है किन्तु होता ऐसा ही है। तात्पर्य यह कि प्रेम भी उपर्युक्त धर्म के स्वरूप से एकरूप है–इस से इन्कार नहीं किया जा सकता।

4. परमानन्द के लिए अंग्रेजी में एक शब्द है 'एक्स्टसि' **(ecstasy)**। व्युत्पति के अनुसार इसका अर्थ होता है–बाहर खड़ा होना। और वास्तव में आनन्द है क्या ? चाहे जो अवस्था हो, चाहे जो परिस्थिति हो, तन–मन–बुद्धि और इस दृश्य संसार से बाहर निकलने का ही दूसरा नाम आनन्द है। यदि हम अपने अनुभवों की छान बीन करें तो हम कह सकेंगे कि जब हम द्वैत के बंधन से चाहे वह थोड़ी देर के लिए ही क्यों न हो–मुक्त हो जाते हैं तभी हमें आनंद की प्राप्ति होती है। इच्छित वस्तु और इच्छा करने वाला–जब दोनों मिलकर एक हो जाते हैं तभी आनन्द प्रकट होता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि आनन्द के स्वरूप में और धर्म के स्वरूप में पूर्ण एकता है। इन तथ्यों के निरीक्षण से यही स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि जीवन के सभी श्रेष्ठ एवं चिरभिलषित लक्ष्य हमें तभी प्राप्त होते हैं जब हमारी मन–बुद्धि और उसके साथ ही यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् उस अज्ञात तत्व में लीन हो जाता है। किन्तु इस प्रकार–इस प्रकार की साधनाओं से हम उस सर्वव्यापक सार्वभौमिक तत्त्व में केवल क्षण भर के लिए गोता लगा लेते हैं, जैसे शब्दकोष में प्रवेश करके हम एकाघ शब्द का अर्थ जान लेते हैं अथवा जैसे समुद्र में गोता मारने से गोताखोर के हाथ में तुरन्त ही एकाध मोती आ जाता है।

भोग–विलास से प्रकट होने वाला विषयानन्द भी, यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो तत्वतः धर्ममय होता है किन्तु जिस ढंग से इन भोग–विलासों में हमें धर्म की प्राप्ति या अनुभव होता है, उसकी तुलना उस ढंग से की जा सकती है जैसे कोई गंदी नाली के झरोखे से दरबार का सौंदर्य देखने की चेष्टा करें। ये भोग–विलास तो बिजली की उन कौंधों के समान हैं जो तत्त्व रुप से व्यापक सूर्य प्रकाश से एकरूप होते हुए भी भलाई की अपेक्षा बुराई अधिक करते हैं। भोग–विलास की उपमा के लिए एक सुन्दर कहानी है जिसमें प्रीमेथियस ने स्वर्ग से अग्नि चुराने की चेष्टा करके अनेक यातनाये सही थीं।

अब प्रश्न यह है कि क्या इस परम कल्याणमय

दरबार में नियमित द्वार से प्रवेश पाना सम्भव नहीं है ? क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है जिसके द्वारा अर्द्धनिशा की विद्युत झलक को अनादि कालीन दिवाप्रकाश में परिणत किया जा सके। हमारे हृदयों में अपने आप ऐसी इच्छा विद्यमान होती है और इसीलिए साधारणतः हमारे लिए धर्म की आवश्यकता होती है। जो इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कठिन प्रयास करते हैं वे निस्संदेह प्रशंसनीय हैं और जो धर्म की इस महत्ता का तिरस्कार करते हैं, वे मानो जानबूझकर अपनी इच्छा के विरुद्ध आत्मघात में लगे हुए है।

दर्शनशास्त्र अथवा विज्ञान ने इस अनिर्वचनीय तत्त्व का रहस्य जानने के लिए जितने अधिक प्रयास किये हैं, वे सब बुरी तरह असफल हुए हैं। देश–काल और कार्यकारण संबंध–इन पर चाहे द्रष्टा और दृश्य के दृष्टिकोण से विचार किया जाय, उनका वास्तविक स्वरूप समझने में नहीं आता। पदार्थ, गति या शक्ति का अन्तिम स्वरूप खोजते समय अन्वेषक–मस्तिष्क के सामने ऐसी घोर बाधायें उपस्थित होती है, जिन को पार करना असम्भव हो जाता है। 'एटोमिक थियरी' अणुमन्तव्य में स्वयं विरोध उत्पन्न होता है। यही हाल अन्त वैज्ञानिक वोस्कोविच के 'गति–केन्द्र' मन्तव्य का हुआ। संसार के जितने भी प्रमाणाधारित धर्म विज्ञान प्रचलित हैं उन सब पर किसी न किसी अंश में विचारहीनता की छाप लगी हुई है। एक दर्शनशास्त्र दूसरे दर्शन का खण्डन और निन्दा करता है। दूसरा उसी रूप से बदला लेने में कोई बात उठा नहीं रखता। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति का अन्तरंग बुद्धि के लिए सदैव रहस्यपूर्ण ही रहेगा। दूसरे शब्दों में समष्टि की गहराई का पता लगाना मानवी बुद्धि से परे की बात है। तो क्या ऐसी स्थिति में समृष्टि के आधारभूत उस निरपेक्ष तत्व की खोज करने में सारा बल और सारी शक्ति व्यावहारिक चीजों, जैसे रेल, तार अथवा विनाशक बारूद और बमों की शोध और आविष्कार में ही लगाना चाहिए किन्तु इन खिलौनों से भी तो पूरा नहीं पड़ता, उनसे शान्ति नहीं मिलती। हर एक नई वस्तु प्राप्त होने पर और नई वस्तुओं की प्राप्ति के लिए हमारे हृदय में जो अनिवार्य लालसा जाग्रत होती है, वह जोरदार शब्दों में सांसारिक आकांक्षाओं की तुच्छता हमारे सामने प्रकट करती है।

इन विचारों से हम घोर निराशा में पड़ जाते हैं। किन्तु उपनिषद कहते हैं–निराश मत हो। शान्ति के लिए तुम्हारे हृदय की अन्तर्तम आशा कभी व्यर्थ न जायेगी। इस सत्य तत्व के विरुद्ध हम अपनी आँखें चाहे जितने हठ से बन्द रखें, एकान्त के कुछ सुखद क्षणों में ऐसे प्रश्न बरवश हमारे सामने आ जाते हैं जैसे, आखिर, संसार का यह सारा पसारा कहाँ से प्रकट हुआ है ? मैं कौन हूँ, अथवा मैं हुआ ही क्यों ? इस विशाल पृथ्वी और अनन्त आकाश का प्रयोजन क्या है ?

वेद कहते हैं कि हमारे हृदय में बद्धमूल इस प्रश्न का कोई न कोई समाधान अवश्यमेव निकलना चाहिए, यद्यपि दर्शन, विज्ञान अथवा सांसारिक प्रेम से यह कार्य नहीं हो सकता। यह प्रश्न वास्तव में स्वयं उसी अनिर्वचनीय माया का अंश है जिसे वह हल करना चाहता है। जैसे कोई बाज उस आकाशमंडल को पार नहीं कर सकता, जिसके भीतर वह उड़ता है, उसी प्रकार

हमारी विचारशक्ति अपनी सीमा के क्षेत्र को पार नहीं कर सकती। जब तक प्रश्न-कर्ता और जिनके बारे में प्रश्न किया जाता है इनका द्वन्द्व बना रहेगा, तब तक माया के कारागार की दीवारें नहीं टूट सकती और न हम दृश्य -पदार्थ से ऊपर ही उठ सकते हैं। हमारा यह आदर्श एक विशेष साधना से प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु जब उसकी प्राप्ति हो जाती है तब वहाँ न प्रश्न का नामोनिशाँ रह जाता है और न उत्तर ही का। इसी आदर्श को प्राप्त करना वेदान्त का लक्ष्य है।

किन्तु सांसारिक प्रेम, सुख, आमोद–प्रमोद– ऐसी बातों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता, क्योंकि इनका तरीका गुलामी बढ़ाने वाला है। जिसकी ऐसी अद्वैत दृष्टि हो जाती है, वह स्वंय ब्रह्म है, जो मन और बुद्धि से नहीं जाना जा सकता। जो मनुष्य इस ब्रह्म के दर्शन भर कर लेता है, वह भय और चिन्ता से मुक्त हो जाता है। जिसे ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है अथवा जिसे धर्म की प्राप्ति होती है, उसका चरित्र ऐसा निर्मल हो जाना चाहिए जो किसी प्रकार हिलाया नहीं जा सकता।

यही 'धर्म' हम सब के लिए अपेक्षित है।



ऐ प्राचीन भारत के ऋषियों, देखो तो! तुम्हारे वंशज किस अधोगति को पहुंच रहे हैं। तात्कालिक आवश्यकताओं और नवीनतम वस्तु को उस भाषा के व्याकरण के नियमों से तय करना न जाने कब से बन्द हो गया है। संस्थाएं मनुष्यों के लिए हैं –मनुष्य नियमों और संस्थाओं के लिए नहीं है। कुछ लोग कहते है कि भाष्यों के द्वारा भविष्य और भूतकाल का गठबन्धन हो जाता है। विचार कितना लुभानेवाला और किस यूक्तियुतर रीति से वर्णन किया गया है! परन्तु क्या हम अपने पुराने गुदड़ों में पहले ही से बहुत से सीवन ओर पैबन्द नहीं लगा चुके हैं ? सत्य को समझौते की आवश्यकता नहीं, वह झुक नहीं सकता। पृथ्वी दिन–रात सूर्य की परिक्रमा करे, परन्तु सूर्य को पृथ्वी की परिक्रमा करने की आवयकता नहीं। भूत और भविष्य का मेल–जोल बनाये रखने के अभिप्राय से क्या विज्ञान के आधुनिक अविष्कार ईसाईयों की बाइबल क्या दूसरे धर्म ग्रन्थों (जैसे भाष्यादि) के साथ जोड़े जा सकते हैं ? ईश्वरप्रणीत धर्म–ग्रन्थों को स्वयं बोलने दो। ईश्वर में इतनी सज्जनता तो अवश्य होनी चाहिए कि वह अपने वचनों को अनेक अर्थों वाला न बनाये। वह ऐसा क्यों करे कि संसार के लोग सहस्त्रों वर्ष तक एक भूल से दूसरी भूल में गोते खाते रहें, और तब तक कोई स्वंयभू ईश्वरदूत या टीकाकार आकर उनके अर्थ न बतावे तब तक समझें ही न जाये।

स्वामी रामतीर्थ का अमेरिका में दिया हुआ एक व्याख्यान

मनुष्य अपने भाग्य का आप स्वामी है !

स्वामी रामतीर्थ

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।
गीता

स्त्री पुरुष रूप में प्रकट होने वाले हे परमात्मन् !

मनुष्य अपने भाग्य का आप स्वामी है, यही आज की रात के व्याख्यान का विषय है । सच पूछिये तो मनुष्य स्वयं परमेश्वर है और इसलिये यह केवल अपने ही भाग्य का मालिक नहीं किन्तु सारे संसार का वही स्वामी है। पर आज के व्याख्यान में हम 'मनुष्य' शब्द का अर्थ वेदान्त प्रतिपादित सूक्ष्म शरीर ही करते हैं। और इस अर्थ में मनुष्य इच्छा, आकांक्षा और सुखाभिलाषा करने वाला व्यक्ति है। यदि 'मनुष्य' शब्द का इतना संकुचित अर्थ भी किया जाय तो भी 'मनुष्य अपने भाग्य का आप मालिक है'। इस विषय पर भिन्न भिन्न दृष्टि से विचार किया जा सकता है, परन्तु आज इस पर पूर्णतया विचार नहीं होगा। 'मनुष्य' शब्द का जो संकुचित अर्थ किया गया है उसी दृष्टि से व्यास दृष्टि से आज उस पर विचार होगा ।

हमारे जन्म के कारण हम ही हैं।

मनुष्य की यह धारणा स्वाभाविक है कि वह अपनी परिस्थिति को बहुत कुछ बदल सकता है। लोगों की यह कल्पना है कि यदि किसी मनुष्य का जन्म किसी विशिष्ट परिस्थिति में हो तो उसमें वह बहुत कुछ परिवर्तन कर सकता है उस पर अपना अधिकार जमा सकता है। आपने ऐसे बहुत लोग देखे होंगे कि जिनका जन्म गरीबों के घर होकर भी वे पीछे से बहुत बड़े धनी बन गये हैं। अत्यन्त दरिद्र मनुष्य केवल अपने पुरुषार्थ के बल से संसार में अपना नाम अमर कर गये हैं। अत्यन्त हीन दशा में जन्मे हुए लोग अपने परिश्रमों से उत्तम दशा को प्राप्त हुए हैं। नेपोलियन बोनापार्ट का

उदाहरण लीजिये, शेक्सपियर का जीवन चरित्र देखिये, किसी समय बिट्रेन के स्थानीय स्वराज्य के अध्यक्ष का पद प्राप्त किये हुए व्हिटिङ्गटन की जीवनी पढ़िये। ये सब जन्मतः दरिद्र थे पर अपने परिश्रम और पुरुषार्थ से ही 'बड़े आदमी 'बन गये। चीन राज्य का एक मुख्य मन्त्री किसान था। इन उदाहरणों से यह सिद्ध हो सकता है कि **मनुष्य की परिस्थिति का परिवर्तन उसी के हाथ है। परन्तु जन्म और जन्म देने वाले माता पिता का चुनाव भी अपनी ही इच्छानुसार हुआ करता है, यह वेदान्त का सिद्धान्त है पर इस सिद्धान्त पर मनुष्य का एकाएक विश्वास होना कठिन है। बालकों की बालक्रीड़ा देखकर उनकी भविष्यत दशा का अनुमान हम कर सकते हैं, पर वही क्रीड़ा देखकर उनके पूर्वजन्म की इच्छाओं का भी अनुमान किया जा सकता है, यह बात समझ में आना जरा कठिन है परन्तु चाहे जिस दृष्टि से विचार कीजिये, मनुष्य का भाग्य उसी के अधीन है।** वेदान्त का यह तत्व है कि यदि आप जन्म से अन्धे हों तो उसके कारण आप ही हैं। यदि आपका जन्म धनहीन के घर हुआ हो तो उसके कारण भी आप ही हैं। अत्यन्त बुरी दशा में यदि आप जन्मे हों तो वह भी आप ही के कर्मो का फल है। और तो क्या, आपके जन्म के कारण भी आप ही हैं, इस अर्थात् हम अपना जन्म स्थान प्रश्न पर केवल इसी दृष्टि से पहिले से ही कैसे निश्चित कर लेते हैं और अपने माता पिता का भी चुनाव हमारी ही इच्छानुसार कैसे होता है, इसी बात पर आज हम लोग विचार करेंगे। इस प्रश्न पर विचार करना यानि एक तरह से पुनर्जन्म पर ही विचार करना है। परन्तु पुनर्जन्म का विस्तार से विवेचन न कर संक्षेप में ही उसपर हम विचार करेंगे।

मृत्यु के पश्चात् होनेवाली स्थितिपर भिन्न भिन्न कल्पनाएं।

कुछ लोग यह समझते हैं कि मनुष्य मृत्यु के पश्चात बिल्कुल नष्ट हो जाता है। परन्तु उनके इस कथन पर दूसरे कुछ लोग विश्वास नहीं करते। हम, आप, सभी की इच्छा रहती है कि हमारे प्रियजनों में से किसी की भी मृत्यु न हो। सदा के लिये इस संसार से उनका उठ जाना हम लोगों को भला नहीं मालूम होता। उसी प्रकार लोगों को अमरत्व की कल्पना भी नैसर्गिक स्वाभाविक है। यही कारण है कि उन्हें जो मनुष्य की मृत्यु के पश्चात् उसके बिल्कुल लोप होने पर विश्वास नहीं करते उन्हें किसी दूसरे जगत की कल्पना करनी पड़ती है। परन्तु वे इस काल्पनिक जगत् के अस्तित्व का कुछ भी प्रमाण नहीं दे सकते। इस मत में भी सत्यता का कुछ अंश अवश्य है, और इस पर पिछले व्याख्यान में विचार हो ही चुका है। परन्तु, मनुष्य मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग या नरक प्राप्त करता है, यह मान लेने से भी सब बातें स्पष्ट नहीं होतीं। यह विचार एक देशीय है। भौतिक शास्त्र की दृष्टि से भी इसका विचार होना चाहिये। परन्तु आध्यात्मिक नियमों को आधिभौतिक विषय में न घुसने देना चाहिये। कल्पना कीजिये, एक मनुष्य मरा। वह जमीन में गाड़ा गया और मिट्टी में मिट्टी मिल गई। अब देखिये कि शरीर मिट्टी में मिल गया सही, पर उसका विनाश नहीं हुआ। उस शरीर का रूपान्तर हुआ। उस शरीर के भौतिक तत्त्वों का, किसी दूसरे रूप में क्यों न हो, अस्तित्व बना रहता

है। उनका लोप या विनाश कभी नहीं होता। आपके मित्र का वही मृत शरीर उसी कब्र पर शायद सुन्दर गुलाब के रूप में भी फिर दिखलाई पड़ सकता है किसी दिन वह वृक्ष के रूप में भी दृष्टिगोचर हो सकता है। तात्पर्य, उम्र शरीर का लोप या विनाश नहीं हुआ, यह निश्चय है। सूक्ष्म शरीर का नष्ट होना सम्भव नहीं ! अब यह प्रश्न उठता है कि क्या सत्तत्व ईश्वर भी नष्ट हो जाता है ? नहीं, नहीं। वह तो अविनाशी है। जो सच्चा देही है कभी वह नष्ट नहीं हो सकता। और कोई भी उसे नष्ट नहीं कर सकता। अब सूक्ष्म शरीर का प्रश्न रह गया। सूक्ष्म शरीर भावना, आकांक्षा और वासना अथवा जिसे आप आत्मा की इच्छा और कामना कहते हैं उनका बना हुआ है। क्या मृत शरीर के साथ साथ वे इच्छाएँ भी जमीन, में गड़ जाती है ? नहीं, उन्हें जमीन में गाड़ना सम्भव नहीं। फिर उनका क्या होता है ? प्रश्न यह है कि यह सूक्ष्म शरीर मनुष्य की वासनाएँ या उसके मनोविकार और इच्छाएँ मनुष्य के मर जाने पर कहां जाती हैं ? आप कहेंगे कि वह सूक्ष्म शरीर मृत्यु के पश्चात् काल्पनिक संसार में स्वर्ग या नरक में जाता है। और यह कहना आपकी दृष्टि से ठीक भी होगा पर इस प्रश्न का ऐसा उत्तर होना चाहिये जो शास्त्रसंगत और भौतिक संसार में सत्य सिद्ध हो। 'इस संसार की किसी वस्तु का लोप या विनाश नहीं होता' यह शास्त्र का अबाधित और सर्वव्यापी सिद्धान्त आप जानते ही होंगे। प्रेरणाशक्ति का नियम देखिये, जड़ पदार्थों के अविनाशित्व का नियम लीजिये, शक्ति के प्रकृति नित्यत्व के नियम पर विचार कीजिये, इन सब नियमों से यही सिद्ध होता है कि किसी वस्तु का विनाश होना सम्भव नहीं। अब यह सोचिये कि अपना शरीर नष्ट नहीं होता किन्तु उसका रूपान्तर हुआ करता है और अपने शरीर में निवास करने वाली आत्मा का लोप या विनाश तो होता ही नहीं, क्योंकि वह नित्य और अव्यय है तो फिर कामना और वासना का ही विनाश क्यों हो ? शक्ति के प्रकृति नित्यत्त्व का जो अबाधित नियम है उस नियम से ऐसा होना असम्भव है। हमें कोई अधिकार नहीं कि हम वासनाओं को नाशवान कहें। उनका रूपान्तर या स्थानान्तर हो सकता है, पर विनाश या लोप कभी नहीं हो सकता। एक मोमबत्ती को जलाकर रख दीजिये। घण्टे आधे घण्टे में वह बिलकुल जल जायेगी। मोम और बत्ती दोनों लोप या नष्ट हो जायेंगे। पर रसायन शास्त्र द्वारा हमें यह मालूम होता है कि मोमबत्ती का विनाश नहीं हुआ। एक टेढ़ी नलिका लीजिये और उसमें दाहक शोरा और एक और रसायनिक द्रव्य डाल दीजिये, आपको मालूम हो जायेगा कि वह मोमबत्ती नष्ट नहीं हुई किन्तु उसमें की भिन्न भिन्न वस्तुएँ उस नालिका में वर्तमान हैं। किसी गिलास या थाल में पानी भरकर वह गिलास या थाल यदि खुली हवा में रख दी जाय तो उस पानी की भाप बनेगी। साधारण मनुष्य यही सोचेगा कि वह पानी लोप हो गया या उसका नाश हो गया परन्तु पदार्थ–विज्ञान–शास्त्र कहता है कि वह पानी वायु में है नष्ट नहीं हुआ। प्रक्रिया से यह बात सिद्ध हो सकती है।

वेदान्त अथवा आत्मा का रसायन शास्त्र :

इसी न्याय से जब मनुष्य मरता है तब उसकी वासनाएँ और भावनाएँ आदि सब कुछ शरीर के साथ नष्ट हो जातीं हैं, यही साधारणतः

लोग समझते हैं। परन्तु वेदान्त–जिसे हम आत्मा का रसायनशास्त्र कह सकते हैं यह सिद्ध करता है कि इनका नाश होना नहीं और होना सम्भव नहीं। तब फिर ये वासनाएँ कहां जाती हैं–क्या हो जाती हैं ? गणित शास्त्र के सिद्धान्त को जिस प्रकार हम लोग हल करते हैं उसी प्रकार हम इसे भी हल करेंगे। हल करने के लिये जब हम लोग कोई सिद्धान्त लेते हैं तब पहिले गृहीत क्या है और अनुमान क्या है या कल्पना क्या है और क्या सिद्ध करना है यही हम देखते हैं। इन दोनों बातों का हम लोग विचार करते हैं। कभी. कभी तो केवल गृहीत बातों का विचार करने से ही प्रश्न हल हो जाता है। कभी कभी उस बात का विचार करना पड़ता जिसे हमें सिद्ध करना हो या गृहीत और सिद्ध होने वाली दोनों बातों का हमें परस्पर सम्बन्ध मिलाना पड़ता है। अब यहां हमारे सामने प्रश्न क्या है ? इसमें कौनसी बात गृहीत है और क्या सिद्ध करना है ? जन्म और मृत्यु–अथवा मृत्यु और जन्म भी कह सकते हैं–येही दो बातें हैं। इस संसार में हजारों लोग जन्म लेते और हजारों मरते हैं। अब जो लोग मरते हुए दिखलायी देते हैं उनकी कामना और वासना उनके साथ ही नष्ट हो जाती है, यदि यह कल्पना की जाय तो वह शास्त्र– सिद्ध नियमों के विरूद्ध होगी। यदि यह मान लिया जाय कि हमारी वासनाओं का विनाश होता है तो यह भी हमें मानना पड़ेगा कि भाव का अभाव होता है। परन्तु यह असम्भव है। भाव का अभाव कभी नहीं होता–वस्तु के अस्तित्व का लोप हो जाना असम्भव है। अतएव यह भ्रामक कल्पना दूर करने के लिये हमें यह मानना आवश्यक है कि मृत्यु के पश्चात् हमारी इच्छाएँ वासनाएँ–नष्ट नहीं होतीं।

पुनर्जन्म की कल्पना क्यों माननी पड़ती है ?

अब इसके बाद दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि "फिर ये कहां जाती हैं इनका क्या होता है ? " इस प्रश्न– पर विचार करना मानों हमारा जन्म क्यों और कैसे होता है इस पर विचार करना है। संसार में जितने मनुष्य जन्म लेते हैं उनमें परस्पर अनेक भेद हम देखते हैं। धारणा–शक्ति, मनोवृत्ति, मन का झुकाव, शकल सूरत, मस्तिष्क की रचना और बुद्धि आदि सब बातों में मनुष्यों में परस्पर जन्मतः कितनी विभिन्नता होती है। किसी की बुद्धि मन्द तो किसी की तीव्र, किसी का सिर गोल तो किसी का लम्बा दिखलाई देता है। यही बात ग्रहण–शक्ति के विषय में भी है। यह क्यों ? एक ही माँ–बाप के दो लड़के होते हैं, पर उन दोनों के स्वभाव में जमीन आसमान का अन्तर दिखाई पड़ता है। एक ही घर में केन और आबेल अथवा जोसेफ और उसके भाइयों के समान. परस्पर विरोधी स्वभाव के पुत्र न जाने कितने ही होंगे ! एक ही पाठशाला में पढ़ने वाले, एक घर में रहने वाले और एक ही गुरु के शिष्य अनेक होते हैं पर उनमें कितना विचित्र प्रकृति वैचित्र्य और रुचिवैचित्र्य दिखाई देता है ! किसी की गणित सीखने की ओर प्रवृत्ति होती है तो किसी को इतिहास में आनन्द मिलता है ! कोई बुद्धिमान् विद्वान् हो जाता है तो कोई निरा लट्ठ ही बना रहता है ! इसलिये यह मानना ही चाहिये कि मनुष्य–स्वभाव में जन्मसिद्ध भेद हुआ करते हैं। कुछ बालकों की जन्म से प्रौढ़

बुद्धि होती है और कुछ मन्द बुद्धि भी दिखायी देते हैं। यह भेद क्यों होता है ? आप इसका कारण परमात्मा की इच्छा या उसकी करतूत कहेंगे! पर यह उस प्रश्न का उत्तर नहीं होगा । यह तो टालमटोल है । और प्रश्न के उत्तर देने में ऐसी टालमटोल करना अयोग्य और शास्त्र विरुद्ध है। ऐसा करने वाले अपना अज्ञान प्रकट करते हैं। भौतिक शास्त्र के जो सिद्ध नियम हैं उन्हीं के आधार पर आपका उत्तर होना चाहिये। जब आप यह कहते हैं कि परमात्मा की इच्छा ही से भिन्न भिन्न स्वभाव के मनुष्यों का जन्म होता है तब आपका यह कथन शास्त्रीय नियमों का उल्लंघन करता है । क्योंकि, अभाव से भाव उत्पन्न होता है, इस कथनानुसार ही आप का कथन बेजोड़ है । इन आपत्तियों से बचने का एक मार्ग है, और वह यह कि, भिन्न भिन्न बालकों में जन्म से दिखायी देने वाले नानाविध भेद वे स्वयं लोकान्तर से अपने साथ ही लाते होंगे, यह बात मान लेनी चाहिये। भिन्न भिन्न मनोवृत्तियाँ और मन के झुकाव बालक अपने साथ ही लाया करते हैं। उनका शून्य वा अभाव में से उत्पन्न होना सम्भव नहीं। इसलिये हमें यह मान लेना चाहिये कि 'ये मनोवृत्तियाँ पूर्वजन्मार्जित हुआ करती हैं।' अब जन्म और मृत्यु इन दो बातों का विचार कर वेदान्त ने उनका कैसा मेल मिलाया है वह देखिये। मनुष्य के मरने से उसकी जो इच्छाएं पूर्ण नहीं होतीं, उनका नाश नहीं होता। मान लीजिये, एक मनुष्य का जन्म हुआ। उसका मन कुछ विशिष्ट संस्कारों से सुसंस्कृत मालूम होता है। अब इन संस्कारों का अभाव में उत्पन्न होना असम्भव है । क्या यह सम्भव नहीं है कि मनुष्य के मरने पर उसके साथ उसके पूर्वजन्मक संस्कार नष्ट न होकर वे दूसरे जन्म में फिर जागृत होते ? और यह मान लेनेसे, भाव का अभाव में लोप होना और अभाव से भाव का उत्पन्न होना, ऐसी ऐसी असम्भव कल्पनाएं करने की फिर जरूरत ही नहीं रहती । इस कर्मसिद्धान्त को कर्मतत्व को मान लेनेसे जन्म मृत्यु का चक्र सृष्टि–नियम के विरुद्ध नहीं चलता, यह आप तुरन्त जान जायँगे।

कर्मतत्त्व :

उसी प्रकार तर्कशास्त्र के एक दूसरे नियम के अनुसार इस कर्मतत्त्व को हमें मानना पड़ेगा। तर्कशास्त्रज्ञ उस अल्पव्यय का तत्त्व कहते हैं। वह यह नियम है कि किसी बात का निर्णय यदि नैसर्गिक तथा भौतिक नियमों से होता हो तो उसके लिये खींचतान कर बनायी हुई अस्वाभाविक बातों से सहायता न लेनी चाहिये। कर्मतत्त्व द्वारा जन्म मृत्यु का यदि ठीक ठीक मेल मिलता है तो और और शास्त्रबाह्य नियमों की सहायता लेने की आवश्यकता ही क्या है ?

कर्मतत्त्व की व्यापकता :

अब इस पर शास्त्रज्ञ कदाचित यह कहेंगे कि बालकों में जो प्रकृति भेद दिखाई देते हैं उनका रहस्य जानने के लिये कर्मतत्त्व का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं। उनका रहस्य आनुवंशिकता के तत्त्व से सहज में जाना जा सकता है। वेदान्ती कहते हैं कि यह असम्भव नहीं और हमारा कथन है कि कर्मतत्त्व अनुवंशिकता के नियम विरुद्ध नहीं किन्तु कर्मतत्व में ही अनुवंशिकता आ जाती है। कर्मतत्त्व के नियम अनुवंशिकता के नियमों को स्पष्ट कर देते हैं यही नहीं किन्तु अनुवंशिकता के नियमों से जिन बातों का निर्णय नहीं किया जा

सकता उदाहरणार्थ मृत्यु के समय वासनाओं का लोप होना–उन बातों का निर्णय कर्मतत्त्व से हो सकता है। इसलिये, शास्त्रज्ञों को कर्म तत्त्व के नियमों पर विशेष ध्यान देना चाहिये। कर्म के नियमों से अनुवंशिता के नियमों का स्पष्टीकरण कैसे होता है ? जब मनुष्य मरता है तब उसकी वासनाएं भी बाह्यतः वायु में मिल जाने के समान नष्ट हो जाती हैं। परन्तु वेदान्तशास्त्र उन्हें नाशमान नहीं कहता। जब मोमबत्ती जलती रहती है तब वह मोम और बत्ती दोनों चीजें धीरे धीरे नष्ट होती हुई जान पड़ती हैं। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। जिस प्रकार स्नेहाकर्षण के नियमानुसार कर्ब और प्राण का संयोग होता है और उज्ज प्राण को अपनी और खींच लेता है उसी प्रकार मृत्यु के पश्चात् मनुष्य की इच्छाएं, वासनाएं अथवा उसकी सूक्ष्म देह एक प्रकार के स्नेहाकर्षण से सच पूछिये तो इसे आत्मिक आकर्षण कहना चाहिये एकत्र होती है। और वे ऐसी जगह आकर्षित की जाती है जहां की परिस्थिति उनके अनुकूल हो–जहां उनकी पूर्ण वृद्धि और विकास हो और उनके फलों को जीव भोग सकें। तात्पर्य, आपकी सब इच्छाएं या वासनाएं ऐसी जगह आकर्षित की जाती हैं कि जहां जो वासनाएं पहिले सफल न हुई हों उनके सफल होने में अनुकूलता हो और जो इच्छाएं पूरी न हुई हों उन्हें पूरी करने का अवसर प्राप्त हो। और इसी तरह प्रत्येक मनुष्य (जीव) अपने माता–पिता का चुनाव करता है। जब तक मनुष्य जीता रहता है तब तक उसकी अनेक इच्छाएं होती हैं। उनमें से कुछ तो उसके जीते हुए ही पूरी हो जाती हैं, और कुछ पूरी नहीं होने पाती! फिर वे क्या होती हैं, कहां जाती हैं ? क्या वे एक दम नष्ट हो जाती हैं ? नहीं। यह संभव नहीं। बाग में पुष्प वृक्ष पर जब हम किसी कली को देखते हैं तब चाहते हैं कि कली खिलकर उसका फूल हो। और जब वह कली खिलकर उसका फूल बन जाता है तब वह हमारी इच्छा भी पूरी हो जाती है। हम लोग देखते हैं कि, चींटी जैसे छोटे से छोटे प्राणियों की भी इच्छाएं पूरी होती हैं, फिर हम मनुष्यों की ही इच्छाएं पूरी क्यों न हों? मनुष्यों पर ही प्रकृति या परमात्मा की अवकृपा क्यों? उनकी भी इच्छाएं पूरी होनी चाहिये। हमारी बहुतेरी इच्छाएं हमारे जीवन में ही पूर्ण हो जाती हैं और इच्छा ही हमारे कर्मों की प्रवृतिका है परन्तु हमारी जो बहुत सी इच्छाएं पूरी नहीं होने पाती वे क्या हो जाती है ? वेदान्त कहता है, 'ऐ मनुष्य! तूने इस लिये जन्म नहीं लिया है कि परमात्मा तेरा उपहास करे। तेरी जो इच्छाएं पूरी न हुई हों–तेरी जो वासनाएं सफल न हुई हों वे सब इच्छाएं और वासनाएं इस जन्म में नहीं तो दूसरे जन्म में अवश्य ही फलद्रूप होगी!"

हमें अपने पूर्वजन्म का स्मरण क्यों नहीं रहता ?

अब यह प्रश्न उठता है कि यदि हमारा पहिले भी किसी रूप में जन्म हुआ था और मरने पर फिर किसी रूप में जन्म होगा तो हमें अपने पूर्वजन्म का स्मरण क्यों नहीं रहता ? इस पर वेदान्त का प्रश्न है कि, स्मृति किसे कहते हैं ? देखिये, 'राम' आपसे विदेशी भाषा में बोल रहा है। भारतवर्ष में रामने विदेशी भाषा में कभी व्याख्यान नहीं दिया। आपसे अंग्रेजी में बोलते हुए मातृभाषा के एक शब्द का भी राम को स्मरण नहीं होता। पर क्या इसलिये आप यह कहेंगे कि हिन्दी भाषा नष्ट हो

गयी ? नहीं, उसका अस्तित्व है, और जब चाहे तब एक क्षण में अरबी, फारसी, हिन्दी या और कोई पूर्वीय भाषा राम अपने दिमाग में ला सकता है। तब स्मृति किसे कहते हैं ? देखिये, हम लोगों का मन एक सरोवर है। इस समय समस्त पूर्वीय भाषाएं–फारसी, अरबी संस्कृत आदि–राम के मनः सरोवर के तले में जा बैठी हैं। इस सरोवर के पानी में हलचल करने से तलकी चीजें तल छोड़कर पानी पर तैरने लगेंगी, और इसी को स्मृति कहते हैं। आप बहुत सी बातें जानते हैं। परन्तु उन सबका आपको स्मरण नहीं रहता। जब आप अपने मनः सरोवर में हलचल करेंगे तब आपको उनका स्मरण होगा। वेदान्त का कथन है कि आपके पूर्वजन्म आपके बुद्धि रूप सरोवर में हैं। वे उसमें अवश्य हैं, पर इस समय तल में जाकर बैठे हुए हैं, ऊपर तैरते नहीं। अब आप इस पूर्वजन्म को यदि जानना चाहें तो जान सकते हैं यह कोई बड़ा भारी कठिन काम नहीं है। अपने ज्ञान–सरोवर के तल में जाकर हलचल करने से तल की वस्तु–संस्कार–ऊपर तैरने लगेगी। यदि आप चाहें तो इस तरह से आपके पूर्वजन्म का स्मरण आपको हो सकता है। परन्तु इससे विशेष कुछ भी लाभ न होगा। क्योंकि उत्क्रान्तिके नियमानुसार हमें आगे बढ़ना गड़े मुर्दे को खोदकर निकालने से लाभ ही क्या ? पिछली बातों को भूल जाना ही अच्छा है। हमें उनसे कोई काम नहीं–हमें अपना आगे का रास्ता है उसे तय करना है।

इसी प्रकार कर्म के नियमानुसार हम लोग इस संसार में जो जो चीजें देखते है और पसन्द करते हैं जो जो बातें हमारे मन को अपनी ओर खींचती हैं उनपर हमारा प्रेम रहने का कारण यही है कि किसी समय हम भी उन्हीं के रूप में होंगे। किसी समय चट्टान के रूप में हम पृथ्वी पर पड़े रहे होंगे और कभी नदियों के प्रवाह रूप में हम बहते रहे होंगे। कभी वृक्ष और वनस्पतियों के रूप में भी हम रहे होगें, और कभी वनपशुओं की झुण्ड के साथ जंगलों में घूमते रहे होंगे। और यही कारण है कि इन सबको देखकर हमारा मन प्रसन्न होता है । यह और एक प्रमाण से भी सिद्ध हो सकता है।

यह प्रमाण सांक्रेटिस अथवा सच पूछिये तो प्लेटो के कथन का अनुवाद मात्र है । स्मृति क्या है ? स्मृति शब्द से वस्तु के पूर्व ज्ञान का बोध होता है। उदाहरणार्थ मान लीजिये कि इन व्याख्यानों को सुनने के लिये दो आदमी रोज आते हैं। सातों व्याख्यानों में वे यहां उपस्थित थे परन्तु आठवां व्याख्यान सुनने उनमें से एक आया और दूसरा नहीं। इसलिये उस उपस्थित मनुष्य से उसके और और मित्र पूछते हैं कि "क्यों जी आज तुम्हारा साथी क्यों नहीं आया कहां रह गया" ? यह प्रश्न लोगों ने उसे क्यों किया ? इसका उत्तर यही है कि, स्मृति अथवा विचार–साहचर्य के नियमानुसार (लॉ आफ एसोसिएशन) यह प्रश्न किया जाता है। उन दोनों मित्रों को रोज एक साथ हम लोग देखते हैं। उन दोनों को हम भली भांति पहिचानते हैं। हमारे मन की यह भावना हो जाती है कि वे दोनों एक ही व्यक्ति हैं। दोनों हमारे मन में मानों एक रूप हो जाते हैं । यह स्थिति हो जाने पर दोनों में से किसी एक को देखते ही दूसरे का स्मरण हुआ करता है। जब हम यह कहते हैं कि हमें उस बात का स्मरण हुआ तब उसके साथ यह भी ध्वनित होता है कि उस बात

से हमें पहिले से हो परिचय था।
अब तर्कशास्त्र का एक न्याय देखिये :–
मनुष्य मात्र मर्त्य है ।
'राम' मनुष्य है ।
(इसलिये) 'राम' भी मर्त्य है ।
समस्त तर्कशास्त्रकी सारे प्रमाणों की और समग्र युक्ति बाद की अट्टालिका अनुमान पर ही खड़ी है। यह कैसी बात है कि पहिले दो सिद्धान्तों का उच्चारण करते ही बिना कहे तीसरा यह सिद्धांत आप ही आप दिमाग में आ जाता है कि 'राम मर्त्य है?' क्या यह बात प्लेटो अथवा सॉक्रेटिस के कथनानुसार ही नहीं है? एक मनुष्य को देखते ही सदा उसके साथ रहने वाले दूसरे मनुष्य का जैसे स्मरण होता है वैसे, यह भी है । यह विचार संगति अथवा स्मृति हरेक के दिमाग में कहां से उत्पन्न होती है? एक प्रकार की पूर्वस्मृति ही। जहां स्मृति है वहां पूर्वानुभव भी होना चाहिये। जिस बालक में मस्तिष्क है और जो विचार कर सकता है उसे यह अनुमान पद्धति सहज में समझायी जा सकती है। रेखागणित के सिद्धान्त को हल करते हुए जो बात सिद्ध करनी होती हैं वह पहिले ही हमारे दिमाग में आ जाती है। इस तरह सिद्धान्त का निर्णय हमारी पूर्वस्मृति का परिणाम हुआ। यह पूर्वस्मृति नैसर्गिक और सभी मनुष्यों के मस्तिष्क में होती है और विश्वासपूर्वक यह कहा जा सकता है कि, जिन वस्तुओं का हमें ज्ञान है, जिन्हें हम पहिचानते हैं उनका ज्ञान ही हमारी पूर्वस्मृति का जागृति या उसकी पुनरावृत्ति है। किसी बात का स्मरण होने के लिये हमें उसका पूर्वपरिचय होना चाहिये वह पहले कभी सीखी हुई होनी चाहिये। अब यह तो सच है कि यह ज्ञान हमारा इस जन्म में प्राप्त किया हुआ नहीं तब यह कहां से उत्पन्न हुआ? इस प्रश्न का उत्तर वेदान्त यह देता है कि वह ज्ञान पूर्वजन्मार्जित होता है।

अब यहां दूसरा वह प्रश्न उठता है कि हमारा भाग्य यदि हमारे अधिकार में है तो हम लोग दरिद्र क्यों रहते हैं ? कोई नहीं चाहता कि किसी कङ्गाल या दरिद्र मनुष्य के घर जन्म हो तो भी हम लोग दरिद्र होते हैं और फूटी तकदीर के कहलाते हैं। यह क्यों ? कंगाल होने की इच्छा तो कोई भी नहीं करता, फिर ऐसा क्यों होता है? इस पर वेदान्त का प्रत्युत्तर यह है कि हमें इस प्रश्न पर पूर्णतया विचार करना चाहिये, उसके एक ही अंग पर विचार कर लेने से काम नहीं चल सकता। सबको राजा अथवा करोड़पति बनने की इच्छा होती है, अव्वल तो यह कहना ही निरा झूठ है। जिस मनुष्य को मासिक वेतन तीस रुपया मिलता है वह बहुत हुआ तो, यह चाहेगा कि उसकी सौ रुपया तनख्वाह हो जाए राजा बनने की कल्पना उसके मन में कभी आ ही नहीं सकती।

हमारी जन्म परिस्थिति कैसे निश्चित होती है ?

इस प्रश्न पर और एक दृष्टि से विचार किया जा सकता है। हम लोग जो कल्पना–संकल्प करते हैं वे परस्पर विरोधी और अयोग्य होते हैं–परिस्थिति के अनुकूल नहीं होते। हम उन्हें अपने अधीन नहीं रखते, किन्तु स्वयं उनके गुलाम बन जाते हैं और यही कारण है कि हमारी इच्छा के विरुद्ध हमें कष्ट सहने पड़ते हैं।

अब आज के व्याख्यान का उत्तर भाग बड़ा मनोरंजक होगा। कल्पना कीजिये, एक मनुष्य है उसे दिनरात विषयेच्छा के सिवा और कुछ भी

नहीं सूझता। उसे ज्ञान की, नाम की, धर्म की किसी बात की जरूरत नहीं। उसे यदि किसी बात की जरूरत है तो केवल विषयोपभोग की। बस, कल्पना कीजिये कि उस मनुष्य–जन्म पुनर्जन्म प्राप्त होगा वह यही उसकी इच्छा है। फिर उस की मृत्यु हुई। अब उसे कहां, किस योनि में जाना होगा ? उसके संस्कारों पर यदि विचार किया जाय तो यह सम्भव नहीं कि, विद्वान अथवा धनी माता–पिता की सन्तान रूप में उसका पुनर्जन्म हो। वेदान्त–शास्त्र का कथन है कि इस मनुष्य को जब विषयोपभोग के सिवा और कुछ भी नहीं सूझता था तो इसका पुनर्जन्म श्वान अथवा वराह योनि में ही होना उचित है क्योंकि, कुत्ते अथवा सुअर का शरीर उसे प्राप्त होने से उसकी पूर्वजन्म की विषयोपभोग की इच्छा जन्मान्तर में अवश्य ही पूरी हो सकेंगी। तात्पर्य, पूर्वजन्म की वह इच्छा पूर्ण होने के लिये उसका पुनर्जन्म श्वान अथवा वराह योनि में ही होना चाहिये। अब चाहे वह कुत्ता हो या सूअर अपने इस पुनर्जन्म का वह आप ही कारण हुआ, यह सिद्ध है । जैसी इच्छा वैसा फल ! इस संसार के लोग जब किसी बात की इच्छा करते हैं तब यह नहीं सोचते कि उस इच्छा का क्या परिणाम होगा और जब उस इच्छा के फल भुगतने का समय आता है तब रोने लगते हैं और अपना माथा ठोंकने लगते हैं। इसलिये हरेक मनुष्य को उचित है कि पहिले परिणाम सोचकर फिर किसी बात की इच्छा करे क्योंकि, हमें जो कष्ट या दुःख भुगतने पढ़ते हैं उन्हें हम स्वयं ही उत्पन्न करते हैं।

अब 'राम' आप लोगों की भारतवर्ष के एक कवि की कथा सुनावेगा। वह कवि मुसलमान था, बड़ा चालाक, हँसोड़ और मौजी आदमी था। वह किसी राजा का दरबारी था। राजा उस पर बहुत प्रेम करता था उसे बहुत चाहता था। एक दिन रात को राजा ने बड़ी देर तक उस कवि को अपने पास बैठा रखा और उस कवि ने भी उत्तम उत्तम कविताएँ और कहानियां सुनाकर राजा को खूब बहलाया। उस दिन राजा को सोने में बड़ा विलम्ब हुआ। रात अधिक बीत चुकी थी और उस कवि की सुनाई हुई विचित्र बातों पर राजा विचार करता था, इसलिये उसे और भी नींद नहीं आती थी। रानी ने राजा से पूछा "आज महल आने में इतनी रात क्यों हुई ? " राजा ने उत्तर दिया 'एक चतुर और हसोड़ मनुष्य की बातों में समय का कुछ ख्याल न रहा। रानी ने फिर पूछा 'वह कौन मनुष्य था ? 'इस पर राजाने उस कवि के गुणों की खूब प्रशंसा की और उसके विषय में सारी बातें उसे कह सुनायीं। इतने में पौ फटी और सबेरा हुआ। राजा के मुख से कवि की प्रशंसा सुन उस कवि को देखने की रानी की प्रबल इच्छा हुई। उसने राजा पर उस कवि को देखने की अपनी इच्छा प्रकट की। बस, दूसरे ही दिन राजा ने उस कवि से रानी की भेंट करा दी। आप लोग जानते होंगे कि भारतवर्ष के रीति–रिवाज आपके रीति–रिवाजों से बहुत भिन्न हैं। भारतवर्ष की स्त्रियाँ प्रायः परदे में रहती हैं। विशेषतः मुसलमानों में स्त्रियाँ चेहरे पर नकाब डालें रहती हैं और अपने पति के अथवा अत्यन्त पवित्र और धर्मशील पुरुष के सिवा और किसी के सामने नहीं आतीं। अस्तु! राजा उस कवि को जनानाखाने में ले गया। कवि ने वहां अपनी कविताएं कह सुनायीं और कुछ मनोरंजक कहानियां भी सुनायीं।

सुनकर वहां की सब स्त्रियां बहुत खुश हुई। कुछ दिनों बाद कवि ने यह ढोंग किया कि अब हमारी आंखें खराब हुई है–आंखों से कुछ सूझता नहीं । वास्तव में वह अन्धा नहीं था खूब अच्छी तरह देख सकता था। परन्तु अन्धे होने का उसने ढोंग किया था, और इस ढोंग से उसका यह मतलब था कि यदि लोग मुझे अन्धा समझेंगे तो जनानाखाने में रहने की आज्ञा मिल सकेगी और फिर वहां स्त्रियां उसके सामने बेखटके आया जाया करेंगी। सब तरह के विहार करेंगी और उससे परदा न रखेंगी। कवि अन्धा है, यह सोचकर राजाने उसे जनानाखाने में रहने की आज्ञा दी। परन्तु सत्य कभी छिपकर नहीं रहता, किसी न किसी दिन उसका प्रकाश लोगों पर पड़ता ही है !

एक दिन उस कवि ने एक दासी से एक चीज लाने के लिये कहा। हिन्दुस्थान में किसी मनुष्य को जहां थोड़ा सा धन मिल गया वहां, समझ लीजिये उसपर भयंकर आलस्य सवार हो जाता है। भारतवर्ष में, आलस्य धनी मनुष्य का लक्षण माना जाता है। जो अपने हाथों कुछ भी काम नहीं करता वह बढ़ा आदमी ! गाड़ी में सिर्फ चढ़कर बैठने में जिसे दूसरों से मदद लेने की जरूरत पड़ती है वह तो और भी बड़ा आदमी !! और जो खुद अपने हाथों अपनी पोशाक नहीं पहिनता और बिना किसी दूसरे का सहारा लिये चल फिर नहीं सकता वह और भी बड़ा आदमी माना जाता है। तात्पर्य, वहाँ के लोग पराधीनता को बड़ापन का लक्षण मानते हैं, और स्वावलंबन को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। अस्तु, राजा के दरबार में उस कवि को उच्च्य पद प्राप्त हुआ। तब खुद कोई काम न करना इसमें वह अपना बड़प्पन समझने लगा। एक बार उसे कुर्सी की जरूरत पड़ी। स्वयं उठ कर कुर्सी लाना छोटे दर्जे का काम समझकर उसने एक दासी से कुर्सी लाने के लिये कहा। परन्तु दासी ने उत्तर दिया कि, इस समय दूसरा काम कर रही हूं, मुझे अभी फुर्सत नहीं।" फिर उसने दूसरी दासी से कुर्सी लाने के लिये कहा। परन्तु उसने जवाब दिया कि "यहां कुर्सी नहीं है"। फिर उसने एक तीसरी दासी से कहा कि वह गिलास उठा ला। दासी ने उत्तर दिया "यहां गिलास नहीं है। मैं उधर से दूसरे कमरे से ले आती हूं।" इस पर कवि ने क्रोध से कहा, तुझे सूझता नहीं, ? देख, वह गिलास नहीं तो क्या है ? क्रोध में आकर वह अपने अंधेपन–के ढोंग को भूल गया। बदमाशों की बदमाशी इसी तरह जाहिर होती है।

मेकबेथ नाटक में मेकबेथ की स्त्री ने राजा का खून किया, पर उसी के मुंह से वह जाहिर भी हुआ। खून को वह छिपा नहीं सकी। उस खून ने उसे पागल बना दिया, और उसने आप ही आप अपने राजवैद्य के पास उस खून का अपराध स्वीकार किया। सृष्टि का यह नियम ही है। अस्तु। कवि ने जब उस दासी से पूछा "क्या वह गिलास तुझे दिखायी नहीं देता "? तब वह दासी गिलास लाना छोड़ दौड़ती हुई रानी के पास गयी, और उसे उसने सारा हाल कह सुनाया। उसने कहा "रानी साहिबा, वह कवि अन्धा नहीं है, बड़ा दुष्ट मनुष्य है, उसे निकाल बाहर करना चाहिये!" फिर राजा ने उसे राजप्रासाद से निकाल बाहर किया, और आश्चर्य की बात यह कि तीन दिन के बाद वह कवि सचमुच अन्धा हो

गया! यह कैसी बात है ? इसका उत्तर यह है कि कर्मतत्व के अनुसार ही यह बात हुई। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है । वह कवि आप ही अन्धा बना। उसकी इच्छा या वासना ने ही उसे अंधा बनाया। अंधा होने पर वह बहुत कुछ रोया पीटा, उसने पश्चाताप किया, छाती पीटी पर लाभ कुछ भी न हुआ।

भारतवर्ष में एक बार एक बूढ़ा अशक्त मनुष्य भारी बोझा लिये हुए एक रास्ते से जा रहा था। सिर पर बहुत बोझा भारी होने के कारण वह थक गया और एक वृक्ष के नीचे छांह में जा बैठा। बोझ को उसने नीचे पटका और कहा "हे मृत्यु! जल्दी आकर मुझे इस दुःख से छुड़ा।" ज्यों वह यह कह चुका त्योंही उसे उस स्थान पर 'यम' दिखायी देने लगा। यम को देखकर उसे बड़ा आश्चर्य बड़ा हुआ और वह भय से कांपने लगा। उसने यम से पूछा 'आप कौन हैं ?" यम ने उत्तर दिया –"जिसे तूने पुकारा था वही मैं हूं, और तेरी इच्छा पूरी करने यहां आया हूँ।" यह सुनकर वह बूढ़ा बहुत घबराया और बोला–" मैंने अपने लिये नहीं, इस बोझे के लिये आपको बुलाया था।"

मृत्यु भी अपनी ही इच्छा का परिणाम है।

हमारी सब इच्छाएं, हमारे कामों में कण्टक और हमारे दुःख, हम लोग आप ही उत्पन्न करते हैं परन्तु जब ऐसे दुःख उत्पन्न होते हैं, तब हम लोग रोने और पछताने लगते हैं। हम लोग मृत्यु को आप ही बुला लाते हैं। पर उसके आजाने पर रोने लगते हैं। परन्तु यहां किसी का बस नहीं चलता। नीलाम में यदि आप सबसे बड़ी रकम बोल देगें तो वह माल आपको लेना ही पड़ेगा। गाड़ी के घोड़े को हांकने से गाड़ी भी उसके पीछे पीछे अवश्य ही दौड़ेगी। उसी प्रकार आप जो इच्छा करेंगे उसका फल आपको चखना ही पड़ेगा। साधारणतः लोग वृद्ध होकर मरते हैं। तरूणावस्था में कम लोग मरते हैं। यह क्यों ? वेदान्त–शास्त्र इसका यह उत्तर देता है कि, मनुष्य का शरीर वृद्धावस्था–में व्याधिग्रस्त हो जाता है। ऐसी अवस्था में वे कष्ट उससे नहीं सहे जाते। यह अवस्था उसे भली नहीं मालूम होती तब वह मृत्यु की इच्छा करने लगता है। इस तरह, हमारी मृत्यु कभी हमारी ही इच्छा का परिणाम है! वेदान्त–शास्त्र कहता है कि प्रत्येक मनुष्य आत्मघातक है। जब इच्छा होगी तभी। होगी। यह कैसी बात है कि कुछ लोग युवावस्था में ही मर जाते हैं? इसका उत्तर राम देगा, पर वह आपको एकाएक न जँचेगा। सत्य का सूक्ष्म निरीक्षण करने से आप स्वीकार करेगें कि राम का कहना सत्य है। राम ने बहुतेरे लोगों कों उनकी पूर्ण युवावस्था में ही मरते हुए देखा है । उनकी गृहस्थिति का सूक्ष्म रीति से पता लगाने पर राम को मालूम हो गया कि उन युवाओं की तबीयत उनकी परिस्थिति से बिल्कुल ऊब गयी थी उस परिस्थितिसे वे बिलकुल त्रस्त हो गये थे। और हृदय से उनकी इच्छा यह होती थी कि मृत्यु होकर किसी तरह इस परिस्थिति का परिवर्तन हो। अब इतना समय नहीं कि इस विषय में उदाहरण दिये जायँ पर बात बिल्कुल सत्य है।

भारतवर्ष में एक विशिष्ट पंथ के महाविद्यालय में एक तेज और बुद्धिमान युवक अध्यापक का काम करता था। उसने एक सभा में प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपनी सब आयु इसी विद्यालय के काम में लगा दूंगा। अपनी प्रतिज्ञानुसार उसने कुछ दिनों तक

उक्त विद्यालय का बड़े उत्साह से काम भी किया। पर आगे उसके मतों में परिवर्तन हुआ। उसके विचार और भी ऊंचे हुए उसका मन अधिक उदार हुआ, और उसकी पहिली संकुचित दृष्टि अब व्यापक हुई। तब उसमें और विद्यालय के और और संचालकों में अनबन होने लगी, और उसके विषय में उक्त संचालकों के मन में जो पहिले सहानुभूति थी वह भी धीरे धीरे घटने लगी। तो भी अपनी प्रतिज्ञानुसार उस युवा को विद्यालय का काम करना आवश्यक था। और यही सोचकर वह किसी तरह वहां का काम किये जाता था। परन्तु उसकी स्थिति बड़ी विचित्र थी। शरीर विद्यालय में, तो मन और ही कहीं! बहुत दिनों तक ऐसी हालत में रहना सम्भव नहीं था। फिर थोड़े ही दिनों में उसकी मृत्यु हुई। परिस्थिति बदलने के लिये मृत्यु के सिवा और उपाय ही न था। तात्पर्य, मृत्यु जितनी भयंकर मालूम होती है उतनी भयंकर वास्तव में वह हर समय नहीं होती !

हम लोग दुःखी क्यों हैं ?

हम लोग यदि अपने भाग्य के आप मालिक हैं तो क्या कारण है कि हमें दुःख भोगने पड़ते हैं? हमारी परस्पर विरोधी इच्छाएँ ही हमारे दुख का कारण है। लेखक, व्याख्याता, धर्म्मोपदेशक व अध्यापक बनने की होती है परन्तु साथ ही साथ हम यह भी चाहते हैं कि हमारी विषयेच्छा पूरी हो। अब ये दो प्रकार की इच्छाएँ एक दूसरे के विरुद्ध हैं। और दोनों पूरी होनी चाहिये। पर होता यह है कि एक इच्छा पूरी होती है तो दूसरी अधूरी ही रह जाती है। और इसी से हमें दुख होता है बस इसी तरह हम लोग आप ही दुख मोल लेते हैं। और हमारे दुःखों से भी यह सिद्ध होता है कि मनुष्य अपने भाग्य का आप मालिक है। इसके उदाहरणों में अब राम एक बडी मनोरंजक कथा सुनाना चाहता है।

भारतवर्ष में एक मुसलमान की दो स्त्रियां थी। आप जानते होंगे कि अनेक स्त्रियों से विवाह करने का रिवाज मुसलमानों में ही है हिन्दुओं में नहीं। अस्तु, उनमें से एक स्त्री ऊपर छत पर सोती थी, और दूसरी नीचे एक कोठरी में। एक दिन एक चोर इस मकान में घुसा। चोर चाहता था कि घर का सारा माल लेकर चंपत हो जाए। पर उस घर में सब लोग जाग रहे थे। इसलिए उसकी इच्छा पूरी न हो सकी। फिर तब भोर हुई जब चोर को सब लोगों ने देख लिया। चोर फौरन पकड़ा गया और काजी के सामने लाया गया। चोर कुछ भी चुरा नहीं सका था पर वह दूसरे के घर में घुसा हुआ पकड़ा गया था। यही उसका गुनाह था काजी ने उस पर जिरह की। चोर ने कबूल कर लिया कि वह चोरी करने की गरज से ही घर में घुसा था। काजी ने सुन लिया और चोर को अब वह दंड सुनाने को ही था कि वह बोल उठा–"कृपानिधान, मुझे जो चाहे दंड दीजिए कैद कीजिए, कुत्ते से नोचवाइए पर एक दंड न दीजिए।" यह सुनकर काजी को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने पूछा–"वह क्या दंड है?" इस पर चोर ने उत्तर दिया–"दो स्त्रियों का पति होने का दंड मुझे न दीजिए।" चोर से इसका कारण पूछा गया। उसने जबाव दिया–"सारी रात उस घर के मालिक को सीढियों पर बैठे बैठे बितानी पड़ी। उसकी एक जोरु उसे ऊपर खींचती और दूसरी नीचे खींचती थी। उस बेचारे के सिर के बाल नुच गए पायजामे फट गए और रात भर

बेचारा सर्दी के मारे कांपता रहा। इसीलिए मुझे चोरी करने का मौका न मिला। व्यर्थ पकडा गया और हाथ कुछ भी न लगा।''

इसी तरह हमारी परस्पर विरोधी इच्छाएं ही हमारे सारे दुख उत्पन्न करती है। हमारी इच्छाएं परस्पर विरोधी होती है और आप जानते हैं कि अन्तर्विरोध ही नाश का कारण है। इसलिए अपने अंतःकरण की खूब परीक्षा कीजिए और देखिए कि उसमें शांति है या नहीं। हमारे लक्ष्य और इच्छा में यदि एकात्मता और एकाग्रता हो तो दुःख होने का कोई कारण ही नहीं है परन्तु हमारी इच्छाएं यदि एक दूसरे के विरुद्ध हों तो निश्चय ही दुख हमारा पीछा न छोडेंगे।

कामना के दो प्रकार

मनुष्य की कामनाएं दो प्रकार की होती है, उच्च और नीच। इन दोनों में विरोध रहता है और इनके झगड़े में उत्क्रांति के सर्वसामान्य नियमानुसार जो उच्चतम होगा उसी की अंत में विजय होगी। सृष्टि की रचना ही इस ढंग की है कि उसमें जो वस्तु श्रेष्ठतम हो वही अंत तक बनी रहेगी। इसी सर्वसाधारण नियतानुसार परस्पर विरोधी वासनाओं के झगड़े में सबसे बलवती वासना का ही विजय होना चाहिए। अब उस वासना में यह बल कहाँ से आता है ? 'सत्य' से केवल सत्य से ही बल वा शक्ति उत्पन्न होती है। जिन वासनाओं में सत्य का, न्याय का, पवित्रता का नैसर्गिक सम्पत्ति का अंश अधिक होता है उन्हीं की अन्त में जय होती है। विपत्तियों से सामना कर अपनी उन्नति और प्रगति आप कर लेनी चाहिये। लोभ और तृष्णा के कीचड़ में फँसकर सुखोपभोग में पड़े रहने से काम नहीं चलेगा। धीरे ही धीरे क्यों न हो–पर इससे अलग होने की चेष्टा करनी चाहिये। अपनी उन्नति धीरे धीरे, पर दृढता के साथ आप ही करनी चाहिये। बस इस प्रकार से कर्मतत्व अपने सामने अनन्त सुख का लक्ष्य रखता है ।

वासनाएँ पूरी क्यों होनी चाहिये ?

वासनाएँ पूरी क्यों होनी चाहिये, इस प्रश्न का उत्तर वेद यह देता है कि आपका सत्यस्वरूप– आपकी आत्मा अविनाशी है। राम परमेश्वर है। अब आपकी वासनाएँ, आपका मन और आपका शरीर ये सब अनंतत्व के समुद्र की लहरें होने के कारण जिन वस्तुओं से वे बनी हैं उनका गुणधर्म उनमें आ जाना स्वाभाविक बात है। यह सृष्टि परमात्मा का निश्वास है। यह सृष्टि मेरा निश्वास है। मैने यह सृष्टि निर्मित की है। आपकी आत्मा मै हूँ। आपकी सारी इच्छाओं में ईश्वरत्व का और क्षुद्र अहंकार का अंश होता है। और उनमें माया–अहंकार का अंश जितना अधिक होगा उतना ही उसके पूर्ण होने में विलम्ब होगा।

इच्छा में माया का अंश होने से ही उसके पूर्ण होने में विलम्ब होता है और उसके निश्चयपूर्वक तृप्त होने का कारण उसमें ईश्वरीय अंश का होना ही है। इस पर आप प्रश्न करेंगे कि ईश्वरीय अंश कैसा ? इसका उत्तर यह है कि इच्छा अर्थात् प्रेम, और प्रेम ईश्वरमय है अर्थात् परमेश्वर भी प्रेमस्वरूप है। सारी वासनाओं में गुरुत्वाकर्षण शक्ति है। पृथ्वी चन्द्रमा को अपनी ओर खींचती है, सूर्य, पृथ्वी को आकर्षित करता है और ग्रह एक दूसरे से आकर्षित किये जाते हैं। इस प्रकार संसार में सर्व प्रेम ही प्रेम दिखलायी पड़ता है। वस्तु के प्रत्येक कण में आकर्षण शक्ति होती है पर

सच पूछिये तो यह आकर्षण, यह प्रेरणा, यह संसक्त्याकर्षण और गुरुत्वाकर्षण एक प्रकार की इच्छा ही है । इच्छा परमेश्वररूप होने से उसका पूर्ण होना आवश्यक है परन्तु वह जब स्वार्थ के लिये या व्यक्तिविषयक होती है तब उसे माया अविद्या का स्वरूप प्राप्त होता है। और इसीलिये उसके पूर्ण होने में विलम्ब लगता है।

यदि आप चाहें कि आपकी सब कामनाएं सहज में ही पूर्ण हों तो मायाका अंश कम कर ईश्वरीय अंश को बढ़ाइये। निस्वार्थ भाव से काम करना चाहिये। प्रार्थना का रहस्य क्या है ? हम लोग कहा करते हैं कि परमेश्वर हमारी प्रार्थना सुनता है, इसका क्या मतलब है ? अब इस प्रश्न पर और कभी विचार किया जायेगा।

इच्छा में रहने वाली माया का अंश कम कीजिये ।

आपका भाग्य आपके अधीन है। यदि इस बात का आप अनुभव कर लें तो फिर आपके सुख का पाराबार नहीं। यदि शब्द का आप जप करेंगे और अपने भाग्य के आप ही परिचालक हैं इस बात को भली भाँति अनुभव कर लेंगे तो आपके दुःखी होने का कोई कारण ही नहीं है क्योंकि अपनी परिस्थिति के आप ही निर्माणकर्ता हैं। आप उसके गुलाम नहीं मालिक हैं यह ध्यान में रखिये। परिस्थिति कैसी ही हो, यह शरीर चाहे कारागार में हो या पानी के प्रवाह के साथ बहता हो अथवा किसी के पैरों तले कुचला जाता हो तो भी 'अहं ब्रह्मास्मि' इस मंत्र को कभी मत भूलिये। मैं शरीर नहीं हूँ। परिस्थिति मेरे अधीन है। आपके शत्रु, मित्र, सब आप ही के बनाये हुए हैं।

शत्रुओ! तुम लोग मेरी केवल कल्पना का खेल हो। मित्रो ! तुम लोग मेरी ही कल्पना से उत्पन्न हुए हो। इस तत्त्व को आप लोग अनुभव कर लीजिये, फिर आप आनन्द के शिखर पर पहुंच जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

❖

स्वामी राम तीर्थ पूरी मानवता के साथ एक थे। वे एक कवि–भिक्षु थे, वे प्रकृति के साथ गाते थे, प्रकृति के साथ स्पंदित होते थे।

सरदार जेल सिंह

✳

मुझे स्वामी राम तीर्थ से बहुत प्रेरणा मिली..... एक व्यावहारिक वेदांती, स्वामी राम एक महान देशभक्त भी थे जो भारतीय युवाओं को राष्ट्र के उत्थान के लिए मार्गदर्शन करते रहेंगे.....

लाल बहादुर शास्त्री

✳

स्वामी राम तीर्थ भारत के सबसे महान संत–दार्शनिकों में से एक हैं. हमें उन पर गर्व है..... हमें उनकी याद को संजोकर रखना चाहिए और उनके वेदांत को जीने की कोशिश करनी चाहिए।

श्रीमती इंदिरा गांधी

✳

भारतवर्ष की वर्तमान आवश्यकताएँ

स्वामी रामतीर्थ

कोई नयी तदबीर दृढ़ निकाल कर सम्मान प्राप्त करें अथवा लोकप्रिय बनें, इस इच्छा से बहुतेरे लोग सन्मार्ग को इच्छा से छोड़ देते हैं। इस इच्छा को दूर कर दुख से निराश न होकर अथवा आत्मगौरव से न फूल कर यदि शान्त चित्त से भारतवर्ष की वर्तमान आवश्यकताओं के विषय में विचार किया जाय तो हमें अपनी यह शोचनीय स्थिति मालूम हो जायेगी कि एक ही पवित्र देश में रहने के कारण हम लोगों में परस्पर जो सम्बन्ध हो गये हैं उनकी हमलोग बिलकुल परवाह नहीं करते यानि हम लोगों में बन्धु–प्रेम का पूर्ण अभाव दिखायी देता है । भिन्न भिन्न धार्मिक पन्थ होने के कारण लोग मनुष्यत्व को भूल रहे हैं और एक राष्ट्रियत्व को कल्पना नष्ट सी हो गयी है ।

भारतवर्ष में जितने पन्थ और सम्प्रदाय हैं उनसे शायद अधिक पन्थ और सम्प्रदाय अमेरिका में हैं परन्तु पन्थों के मतों पर अपनी उपजीविका चलाने वाले कुछ लोगों को छोड़ कर और सब लोगों के अन्तःकरण से, 'यह कैथोलिक है' 'यह शास्ता स्प्रिंग, अमेरिका–केलिफोर्निया से भेजा हुआ पत्र । रूई के समान बर्फ के शुभ और निर्मल ढ़ेले बड़े जोर से किन्तु झूमते हुए 'राम' के आश्रम की खिड़कियों पर गिर रहे हैं और पर्वत रूप से शास्ता (फ्रेंच भाषा का शब्द Shasta–पवित्र) हो गया है। उत्क्रांति तत्व पर लिखी हुई एक नयी पुस्तक पढ़कर रामने अभी नीचे रख दी है ।

मैथोडिस्ट है' अथवा 'मैं प्रेसबेटेरियन हूं' इत्यादि कल्पनाओं के सामने देशबन्धुत्व का विचार मिट नहीं जाता । निष्पक्ष होकर देखा जाय तो यही कहना पड़ता है कि भारतवर्ष के समान अमेरिका में धर्माभिमानी लोगों का नैसर्गिक मनुष्यत्व अथवा भूतदया नष्ट नहीं होती। भारतवर्ष में हिन्दू और

मुसलमान कई पुश्तों से एक साथ रह चुके हैं, परन्तु मुसलमानों का आन्तरिक प्रेम पड़ोसी हिन्दुओं की अपेक्षा दक्षिण यूरोप के तुर्कियों से ही अधिक है। हिन्दू मां बाप से पैदा हुआ लड़का ईसाई हो जाने पर अपने भाई हिन्दुओं को हीन और भिन्नता की दृष्टि से देखने लगता है। मथुरा का वैष्णव साम्प्रदायी, दक्षिण–भारतवर्ष के किसी दूसरे वैष्णव साम्प्रदायी के लाभ के लिये और अपने ही गांव के किसी अद्वैतवादी वेदान्त धर्म के मानने वालों की बेइज्जती करने के लिये जो कुछ करे सो थोड़ा है। यह दोष किसके माथे है ? सब पन्थवालों में समान प्रमाण से वास करने वाले अज्ञान और उनकी उलटी समझ का ही यह दोष है। इन लोगों की स्थिति का वर्णन करते हुए इन्हें यदि 'एक ही घर में रहने वाले शत्रु' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

इन लोगों के लिये 'एक राष्ट्रियत्व' एक अर्थशून्य शब्द है। इसका क्या कारण है ? इसका यही कारण है कि भूतकालीन निर्जीव धार्मिक नियमों में अन्धश्रद्धा रखकर धर्म के पवित्र नाम पर सिखायी जाने वाली विचित्र और मूर्खता की बातों के लोग गुलाम बन गये हैं। अर्थात् 'तस्मात् शास्त्र प्रमाणं ते' इस सुन्दर तत्व के नाम पर लोग 'अध्यात्मिक आत्मघात' कर रहे हैं।

उदार शिक्षा, यथार्थ ज्ञान, सप्रयोग परीक्षा अथवा शास्त्रीय विचारों का नियनानुसार अभ्यास आदि बातें अब तक ठीक ठीक न होंगी तबतक ये भागन्तुक कल्पनाएँ लोगों के दिमाग से निकाल बाहर नहीं की जा सकतीं। आधुनिक शास्त्रीय आविष्कारों के कारण जिस पन्थ अथवा सम्प्रदाय में उत्साह और मनुष्यत्व उत्पन्न नहीं हुआ उस पन्थ अथवा सम्प्रदाय को अपने कुछ अन्धभक्तों के सहारे जीने का विलकुल हक नहीं है। 'राम' के मत से धर्म के प्राचीन तत्त्व और नियम उस समय के शास्त्रीय नियम और सिद्धान्त हैं परन्तु दुर्भाग्य से पहिले इन तत्त्वों का विरोध किया गया और फिर इन्हीं को इतनी उत्सुकता से ग्रहण किया गया कि इन सिद्धान्तों को जन्म देने वाली माता स्वतन्त्र विचार और निदिध्यास, (Independent thought & Meditation) का अपमान कर, बालक को (तत्त्व और सिद्धान्त को पुचकारने में लोगों ने उसकी (माता की) हत्या कर डाली। धीरे–धीरे लोगों की इन तत्त्वों और नियमों पर अन्धश्रद्धा होने लगी और वे इन्हें स्वीकार करने बने मैं मनुष्य हूँ यह ज्ञान होने के पहले ही बालक ईसाई, मुसल्मान अथवा हिन्दू बनने लगा। धर्म संस्थापकों ने आधिभौतिक अथवा आध्यात्मिक सृष्टि नियमों का कहां तक अनुशीलन क्रिया है और क्या क्या आविष्कार किये हैं, इन बातों के विषय में जरा भी विचार न कर, आलस्य के कारण उनके केवल मत सुनकर और उनके पन्थों का विस्तार देखकर जब अनुयायी लोग धार्मिक तत्वों और नियमों को स्वीकार करने लगे तब सृष्टि नियम के अनुसार धर्म की अवनति आरम्भ हुई। धीरे–धीरे 'ख्राइस्ट का पर्वत पर कीर्तन' (Christ's Sermon on the mount) अथवा वैदिक यज्ञ के उद्देश्यों की दृष्टि से मूल तत्व नष्ट होने ढंग और उनके स्थान में खाली नामरूपों में ही लोग श्रद्धा करने लगे। धार्मिक नियमों के निर्जीव शरीर की पूजा भली भांति की जा सके, इसलिये उन नियमों की आत्मा निकाल ली गयी और इस प्रकार ख्राइस्ट, मोहम्मद, व्यास अथवा, शंकराचार्य के समान सत्यनिष्ठ महात्माओं को 'ईश्वरप्रेषित' (अर्थात् ईश्वरी तेज को धारण करने

वाले) नाम दिया गया और सृष्टि रूपी मूलग्रन्थ के केवल एक पहलू की अस्पष्ट नकल को ही मूल ग्रन्थ और प्रमाण मानकर उनकी योग्यता पर धब्बा लगाया गया।

राम का यह कथन नहीं है कि, लोकसंग्रह के लिये इन नियमों– से कोई लाभ नहीं था किसी समय इनसे भी लाभ था। पौधे की आवश्यक बाढ़ होने तक ही उसके आसपास जमी हुई घास लाभदायक होती है और आवश्यक बाढ़ पूरी हो जाने पर फिर वही लाभदायक घास पौधे के लिये हानिकर हो जाती है इसलिये वह उखाड़कर फेंक दी जाती है कारण घास से पौधा अधिक महत्व की वस्तु है ।

दूसरों के बतलाये हुए सृष्टि के ज्ञान पर दारमदार रखने की आवश्यकता नष्ट करने के लिये हर एक मनुष्य को यह स्मरण रखना चाहिये कि पैगम्बर की शक्ति प्राप्त करने का सबको एकसा हक है, और इसमें अलौकिकता कुछ भी नहीं है।

कुछ लोगों को तो बिना अपनी आँखों मकान बनता हुआ देखे उसकी रचना की कल्पना ही नहीं होती। उसी प्रकार ऐसे भी कुछ लोग हैं जिन्हें भूतकालीन अथवा वर्तमान समाज व्यवस्था के आगे कुछ भी नहीं दीखता। इन लोगों की संख्या भारतवर्ष में दिन व दिन कम होने के सुचिन्ह दिखायी दे रहे हैं। लोगों के मनकी संकल्प विकल्पावस्था नष्ट कर, सारे दृश्य पदार्थों से होने वाली हमारी एकता और नैसर्गिक सम्बन्ध का सबको अनुभव करा देना, और स्वाभाविक इष्ट विविधता से टिकाऊ, और संघटित एकताको प्राप्त कर लेना ही राम के कर्म पर (dynamic) वेदान्त का उद्देश्य है। इस वेदान्त की आवश्यकता कहां नहीं है ? भारतवर्ष में तो इसका अत्यन्त अभाव है ।

राम का विचार है कि, प्रेम और प्रकाश (ज्ञान) का प्रचार करने के लिये एक संस्था–जीवन संस्था–स्थापित कर भारतवर्ष की वर्तमान आवश्यकता पूर्ण की जाय।

मुख्य बातों का दिग्दर्शन

धार्मिक तत्वज्ञान इस संस्था में प्रथम मुख्यतः तुलनात्मक धर्म और तत्वज्ञान की शिक्षा दी जायेगी। इस संस्था के विद्यार्थियों की, परस्पर विरोधी प्राचीन तथा अर्वाचीन धर्म और दर्शनों का निष्पक्ष बुद्धि से, निर्विकार मन से, किसी न्यायाधीश के समान शान्त चित्त से और शुद्ध अन्तःकरण से अध्ययन करने में सहायता की जायगी। हर एक विद्यार्थी को उसकी योग्तानुसार धार्मिक और तात्विक ग्रन्थ पढ़ने होंगे (आवश्यकता पड़ने पर आचार्यों अथवा प्रोफेसर से सहायता मिलेगी) और संध्या समय सभा की साधारण बैठक के सामने दिन भर जो कुछ पढ़ा हो अथवा पढ़ते हुए जो कुछ शंकाकुशंकाएं उसके मन में उठी हों उन सबको एक तरतीब से कहना होगा । यह सुन लेने पर रात्रि के समय चर्चात्मक परन्तु नियमबद्ध व्याख्यान होंगे और संस्था के भिन्न भिन्न सदस्यों द्वारा उठाये भिन्न–भिन्न विषयों की एकवाक्यता 'राम' के सभापतित्व में होगी। इस प्रकार प्रत्येक सदस्य एक दूसरे के मानसिक परिश्रम से लाभ उठा सकेंगे और एक दूसरे से परस्पर को लाभ पहुँचने के कारण उनके अन्तःकरण शुद्ध भावना, एकता, और प्रेमकी वृद्धि होगी।

वर्तमान समय के अनुकूल इस बौद्धिक और सामाजिक परस्पर–सहायता के कारण मानसिक

कार्यक्षमता और सच्ची संस्कृति की अवश्य वृद्धि होगी।

भौतिक शास्त्र भारतवर्ष के लिये अत्यन्त आवश्यक परस्पर–सहायक शिक्षा–पद्धति की रुचि, नये विद्यार्थियों में धर्म और तत्वज्ञान के द्वारा उप्पन्न की जायगी और बाद उनके अभ्यास क्रम में वनस्पतिशास्त्र, प्राणिशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, रसायनशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र आदि शास्त्रीय विषयों के भिन्न भिन्न अंग जोड़ दिये जायेंगे। भिन्न भिन्न शाखा का अध्ययन आरम्भ होने के साथ साथ प्रयोगशाला, वेधशाला तथा ग्रन्थ संग्रहालय भी स्थापित होना चाहिये।

इस संस्था का उद्देश्य यही होगा कि शास्त्रों का प्रचार कर, लोगों में जो भयंकर धार्मिक अज्ञान है उसे दूरकर लोकशक्ति की अधिक संयुक्तिक और उपयुक्त मार्ग से वृद्धि की जाय। इस संस्था में शास्त्रों का अध्ययन अत्यन्त धर्मिक बुद्धि से करना होगा। शास्त्र, कलाकौशल, और बाह्यतः प्रापंचिक दीखने–वाले उद्योगों का अभ्यास व्यावहारिक वेदान्त सिखाने के लिये कराया जायगा।

'आगझिन' नामक एक बड़े भारी सृष्टि–शास्त्रवेत्ता के विषय में कहा जाता है कि वह अपनी प्रयोगशाला को देवमन्दिर के समान पवित्र समझता था और किसी भौतिक तत्व के महत्व को नीतितत्व के महत्व से किसी प्रकार काम नहीं समझता था । उसका यह मत था कि सृष्टि की भिन्न भिन्न वस्तुओं में समता को ढूंढ़ निकालना मानों परमेश्वर की कल्पना को फिर से अपने दिमाग में लाना है ।

कलाकौशल योग्य समय पर संस्था का यह तीसरा कार्य आरम्भ किया जायगा अर्थात् विद्यार्थियों को 'कलाकौशल' की भी शिक्षा दी जायगी। अब यह कहने की अश्यकता नहीं कि भारतवर्ष में 'कलाकौशल की कितनी ज्यादा जरूरत है।

यूरोप और अमेरिका के बड़े बड़े विश्व विद्यालयों से कुछ विश्वविद्यालय तो पूर्णरूप से स्वाधीन हैं (उदाहरणार्थ येल, हारवर्ड, स्टॅनफर्ड और शिकागोका विश्वविद्यालय)। बड़े दुःख की बात है कि भारतवर्ष के लोग अब तक अपनी आवश्यकताओं को न मालूम कर शिक्षा प्राप्त करने में सरकारी पद्धति का ही अवलंब किये बैठे हैं।

'राम' के सूचित किये हुए जीवनमठ में सब मतों के ग्रन्थों को शास्त्रीय निष्पक्ष भाव से समान स्थान मिलेगा । सत्य, पूर्ण सत्य, अव्यवच्छिन्न सत्य–

यही मठ का ध्येय और ध्यान होगा ।

नास्ति सत्यात्परो धर्मः।

ईश्वर में मग्न स्वामी राम तीर्थ ने हर जगह और सभी मानव जाति में ईश्वर की उपस्थिति का एहसास किया ..... वे ईश्वर के साथ चले और ईश्वर के साथ रहे।

जे. बी. कृपलानी

एक और व्यक्तित्व, जो कई मायनों में स्वामी विवेकानंद से कहीं अधिक आकर्षक था, उन्होंने नव वेदांत के आंदोलन को आगे बढ़ाया।

सी. एफ. एंड्रयूज

भारत का भविष्यकाल

स्वामी रामतीर्थ

संसार की प्रत्येक वस्तु की गति नियमबद्ध है और सारी बातें चक्रनेमिक्रम (The law of Periodicity) के अनुसार होती हैं। इसी नियम के अनुसार विभवसूर्य भी घूमा करता है। किसी समय ज्ञान और धनरूपी सूर्य भारत–गगन के बीचों–बीच चमकता था। ऐतिहासिक दृष्टिसे देखा जाय तो आकाश–मंडल के और तारों के समान यह सूर्य भी धीरे धीरे पश्चिम की ओर जाता हुआ दीखता है। ईरान, असीरिया आदि देशों से होते हुए यह पश्चिम की ओर बढ़ा। मिश्र देश को इसके मध्यान्ह किरण देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके बाद ग्रीस की पारी थी फिर इसके उज्ज्वल तेज को रोम ने अनुभव किया, अनन्तर इसके दिव्य प्रकाश से जर्मनी, फ्रान्स और स्पेन आदि जाग उठे। अन्त में इस विभव सूर्य का उज्ज्वल प्रकाश इंग्लैण्ड में पड़ा। इसी तरह बराबर यह पश्चिम की ओर चला गया और अमेरिका को इसने विभव के शिखर तक पहुँचा दिया। अमेरिका में भी यह अपने नियमानुसार ही पूर्व की ओर से अर्थात् न्यूयार्क से होते हुए पश्चिम की ओर कैलिफोर्निया में जा पहुँचा। जब भारत में दिन था तब अमेरिका का नाम भी किसी ने न सुना था। अब इस समय अमेरिका में दिन है और बेचारे भारतवर्ष में दुःख दरिद्रतारूपी 'रात का अन्धकार छा गया है परंतु धीरज धरिये, विभवसूर्य अब पेसिफिक महासागर को पार करने की चेष्टा में है, और जापान के बहुत शीघ्र एक बलवान राष्ट्र होने के समान दिखायी पड़ते हैं और यदि निसर्ग–नियम सत्य हो, तो यह ज्ञान और धनरूपी सूर्य अपनी प्रदक्षिणा समाप्त कर फिर किसी दिन हमारे भारतवर्ष में दुगुने तेज से निस्सन्देह प्रकाशित होगा । तथास्तु !

भारत का प्राचीन इतिहास देखने से जान पड़ता है कि भारत में अन्धकार छा जाने का मुख्य कारण स्वार्थ है। विदेशों के समान भारत में भी स्वार्थ उत्पन्न हुआ। इस कमर का (भारत वर्ष का) स्वच्छ और शुभ आकाश क्या ही मनोहर है ! वह मेरा है! मेरा है ! मैं ही उसे उपभोग करने का केवल मात्र अधिकारी हूँ, यह कहकर सचमुच हमलोगों ने दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द कर लीं और भारत वर्ष के ज्ञान का प्रकाश केवल अपने लिये ही सुरक्षित रखने की चेष्टा में हमने यहां अन्धकार उत्पन्न किया। परमात्मा के यहां किसी की सिफारिश काम नहीं करती और विभव लक्ष्मी सदा एक ही स्थान में नहीं रहती। तत्त्वमसि के ऐक्य रूपी ईश्वरी तत्त्व का आचरण हम लोगों ने छोड़ दिया। हम लोगों में द्वैतभाव उत्पन्न होकर फूट हुई और इसी कारण से हम शक्तिहीन और दुर्बल हो गये। राष्ट्र के वर्णगुरु ने महा पाप किया। वह यह कि अपत्य समान अन्त्यज जाति के लोगों के साथ अपना (स्वार्थ–त्याग) कर्तव्य भूलकर उन्होंने अपने स्वार्थी अधिकारों पर ही विशेष दृष्टि रखी। अब वह चाहे जो कुछ हो, वर्तमान प्रसंग के प्रताप से वह अवस्था, सुधर रही है, इसमें सन्देह नहीं । जिसे घोर निद्रा लगती है। उसकी जागृति भी उत्साह दायिनी होती है। भारतवर्ष बहुत कालतक सो चुका, अब धीरे धीरे, परन्तु निश्चय उसका आलस्य घटता जाता है और उसी प्रकार पुराणप्रियता (**Conservatism**) भी बदली हुई परिस्थिति से मिलने में अपनी उदारता प्रकट करने लगी है।

प्रगति का यह एक तत्त्व है कि स्वरूप और कार्य में भिन्नता हो, पर तत्त्व और हेतु में एकता हो। हिन्दुओं की वर्णव्यवस्था राष्ट्रीय प्रगति में श्रम तथा उद्योग का सुव्यवस्थित विभाजन और अंतःकरण की, एकता की परिपोषिका थी परन्तु काल प्रभाव के कारण भीतरी तत्त्व की अपेक्षा बाहरी बातों पर ही लोगों की अधिक दृष्टि होने से, वह स्वभाविक क्रम बदल गया। उत्क्रान्ति के स्थान में अवक्रान्ति उत्पन्न हुई, और अन्तमें प्रेम तत्व का भेद और उद्योग तथा शिल्प का मिश्रण तैयार हुआ। एक वर्ण के लोग दूसरे वर्णके लोगों का काम करने लगे, तो भी प्राचीन जाति भेद ने लोगों के अन्तःकरणों में और भी मलीनता उत्पन्न कर दी। देहाभिमान (जाति भेद) बढ़ जाने के कारण ईश्वर–आत्मा अन्यान्य क्षणभंगुर नामरूपों के कीचड़ में गड़ गया। श्रुति प्रायः बेकाम स्त्री हो गयी और स्मृति (प्राचीन आचरण, रूढ़ीसंबंधी नियम) अत्त्याचारियों के शस्त्र का काम करने लगी। भावार्थ की जगह शब्दार्थ होने लगा । किसी ने कहा है कि व्याकरण भाषा को मार डालता है। **Grammar is the grave of language-** व्याकरण भाषा की कब्र (मृत्यु) है। व्याकरण को अबाधित और सुरक्षित रखने की चेष्टा कीजिये, भाषा निर्जीव हो जायगी! इसी प्रकार कड़े नियम, रूढ़ी और कर्मकाण्ड से राष्ट्र का सत्व नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार अन्न की रक्षा करने के लिये कुछ कला तक ही घास उपयोगी होती है उसी प्रकार नियम और कायदे भी कुछ ही काल तक उपयोगी होते हैं परन्तु कुछ काल के बाद यदि उनमें परिवर्तन न हो तो वे ही उन्नति के प्रतिबन्धक हो जाते हैं। भाइयों! स्मरण रखिये, स्मृति और नियम आपके लिये हैं, आप उनके लिये नहीं! सनातन श्रुति के सनातन तत्त्वों

का सब जगह प्रचार कीजिये परन्तु वर्तमान परिस्थिति के अनुसार स्मृति या नियमों में कुछ हेरफेर अवश्य कीजिये। स्मृति पर अपना पैत्रिक अधिकार कायम रखिये आप पर उसका अधिकार न हो। आज भारतवर्ष की नदियों के स्थान बदल गये हैं, बर्फ गिरने के स्थान बदल गये, जंगलों की जगह खेत बन गये, देश का रूप पलट गया, राज्य पद्धति बदल गयी और भारतवासियों के वर्ण में भी परिवर्तन हो गया, तो भी इस अस्थिर जगत् में मृत भूतकाल के आचार और नियमों को सुरक्षित रखने की चेष्टा में आप लगे हुए हैं! सर्वदा पीछे देखते हुए आगे चलना, सचमुच, बड़ा ही खेदजनक है! निश्चय ही ऐसे मनुष्य पग–पग पर ठोकरें खाते हैं ।

आनुवांशिकत्व (Heridity) और उचित सुधार (Adaptation) इन दो तत्वों से जीवन की उत्क्रान्ति होती है। तिर्यक् योनी में सब जगह आनुवंशिकत्व का नियम लगता है । उचित सुधार अथवा उचित हेर फेर अथवा शिक्षा, इस तत्व के उत्कर्ष से अन्य प्राणियों तथा वनस्पतियोंकी अपेक्षा मनुष्य में विशेषतः आती है । छोटा बालक कुत्तेके बच्चे के समान ही मूढ़ और अनजान होता है। यही नहीं, किन्तु कभी कभी इस छोटे बालक की अपेक्षा किसी कुत्ते अथवा तोते के बच्चे को हो अधिक ज्ञान होता है परन्तु इन दोनों में भेद यह है कि कुत्ते अथवा तोते को आवश्यक सब ज्ञान जन्मसे ही आनुवंशिक संस्कार द्वारा प्राप्त होता है और वह मानव बालक सुशिक्षा के द्वारा सारे संसार पर हुकूमत कर सकता है।

मेरे हिन्दू भाइयों! उचित सुधार अथवा परिवर्तन से घबराकर, प्राचीन रीतिरस्मों तथा आनुवंशिक संस्कारों को व्यर्थ महत्व देकर मनुष्य जाति से हीन होने की चेष्टा न कीजिये। देश के समान काल से भी आप मर्यादित हैं। आप भारतवर्ष के प्राचीन ऋषियों की सन्तान हैं, इसमें सन्देह नहीं परन्तु अब वह काल नहीं है। इस समय आप रेलगाड़ी, जहाज और तारायन्त्रों से घिरे हुए अब आप वर्तमान जगत से अलग होकर नहीं रह सकते। आपका झगड़ा यूरोप और अमेरिका के बीसवीं शताब्दि के शास्त्रज्ञ, शिल्पज्ञ और मजदूरों से है। इस झगड़े से आप अपनी जान कभी नहीं बचा सकते। और यदि आप सूक्ष्म निरीणक्ष करें, तो आपको यह विदित हो जायगा कि वर्तमान परिवर्तित परिस्थिति में रहने योग्य यदि आप अपने को न बना लेंगे तो इस संसार से आपका नामोनिशान भी मिट जायगा। यदि आप यह नूतन ज्ञान प्राप्त कर उसे अपनाना न चाहते हों तो अपने पूर्वजों के साथ पितृलोक में जाकर निवास कीजिये। यहां रहकर व्यर्थ समय क्यों नष्ट कर रहे हैं ? जाइये, नमस्कार।

'राम' का यह कथन नहीं है कि आपका राष्ट्रीयत्व नष्ट हो जाय। पौधा वायु, जल, खाद और मिट्टी। सोख लेता है, इसलिये क्या वह कभी वायु, जल अथवा मिट्टी बन सकता है ? कभी नहीं। उसी प्रकार आपको भी बाह्य वस्तुएं ग्रहण कर, उन्हें अपनाते हुए अपनी उन्नति करनी चाहिये परन्तु आपका श्रुतिरूपी प्राण आपके हृदय में सदा सर्वदा जागृत रहना चाहिये ।

समस्त शिक्षाओंका उद्देश्य यह होना चाहिये कि उनके द्वारा देश के सारे साधनों का resources आप ठीक ठीक उपयोग कर सकें। सुशिक्षा के द्वारा लोग अपनी भूमि को अधिक

उर्वरा बना सकें, अपनी खानोंको अधिक वनोत्पादक कर सकें, व्यापार की खूब वृद्धि कर सकें, अपने शरीरको अधिक कार्यक्षम, उत्साही और फुर्तीला बना सकें, मन (बुद्धि) अधिक कल्पक हो, **अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध और पवित्र हों, कारखाने और भी विस्तृत हों और राष्ट्र अधिक संघटित हो। अपना पाण्डित्य दिखाने के लिये बड़े बड़े शास्त्रवचन रटकर कण्ठ सुनाना, धर्म ग्रन्थों के वचनों का मनमाना अर्थ करनेमें व्यर्थ शब्दच्छल करना, और जिन विषयों का सारे जीवन में कभी काम न पड़े ऐसे विषयों के अध्ययन में समय बिताना, शिक्षा नहीं कहाती। जिस ज्ञान का इस व्यवहार में उपयोग नहीं कर सकते उस ज्ञान को दिमाग में भर लेना मानों आध्यात्मिक बद्धकोष्ठ अथवा मानसिक अपच का रोग मोल लेना है।**

अत्यन्त कटु, (अनुचित) पर निर्जीव प्रतिकार किये जाने के कराण हिन्दू लोग यद्यपि कुछ निराश हो जाते हैं तो भी वे धीरे धीरे और निश्चय के साथ आवश्यक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। आज उनमें उचित परिवर्तन भी दीख पड़ता है। पिछले युग के सामाजिक बन्धन शिथिल हो रहे हैं और वर्ण व्यवस्था अपनी स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त कर रही है, यह संतोष की बात है। पाश्चात्य शास्त्रोंका तिरस्कार न करते हुए आज हिन्दू लोग, यह समझकर कि पाश्चात्य शास्त्रों का हमारी ब्रह्मविद्या को अच्छा जोड़ मिल गया, बड़े आनन्द से उनको अपना रहे हैं।

हिन्दुओं के विवाह सम्बन्ध में भी अन्यान्य जातियों के कर्मठ और विद्वान पण्डितों ने नेतृत्व ग्रहण कर वर–कन्या की वयस मर्यादा बढ़ाने के विषय में जातिनिर्बन्ध कर दिये हैं और कभी कभी एक जाति के वर के साथ दूसरी जाति की कन्या से होने वाले विवाह सम्बन्ध में भी अब अधिक रोक टोक नहीं की जाती। हिन्दुओं के भोजन को इतना अनावश्यक महत्व प्राप्त हुआ है कि विधर्मी लोगों ने हमारे धर्म का 'चुल्लिकाधर्म' नाम रख दिया है। इतनी चेष्टाएं करने पर भी हमारा अन्न व्यवहार सम्बन्धी उद्योग कुछ निराले ही मार्ग से होने के कारण हमारे परिश्रम व्यर्थ हो रहे हैं। क्या खाना उचित है और क्या अनुचित, इस विषय को कभी शास्त्रीय चर्चा ही हम लोगों ने नहीं की। आप जैसा अन्न खायेंगे वैसे ही आपके आचार विचार होंगे। किसी यन्त्र से आपकी इच्छित वस्तु, यदि उप यन्त्र में आप उसे न छोड़ें तो, बाहर कैसे निकल सकती है ? जिसने दिमाग और स्नायु को पुष्ट करने वाला अन्न न खाया हो उससे दिमाग और स्नायु द्वारा काम कराने की इच्छा करना निरी मूर्खता है। तरकारी, अनाज और फल में से मानसिक और शारीरिक व्यवसाय अच्छी तरह होने के लिये आवश्यक 'नाइट्रेट्स' और 'फासफेट्स' को प्राप्त करने के लिये, उचित वस्तुओं का चुनाव किया जा सकता है। घी जैसे पदार्थ को, जिसमें दिमाग या स्नायु के लिये पोषक एक भी अंश नहीं है, बड़े महत्व की चीज मान कर विद्यार्थियों के उत्तम भक्ष्य सत्तू को (जव) एक साधारण चीज समझते हैं, क्या यह खेदकी बात नहीं है ? मिरचा, मसाला और औषधियाँ शरीर–यन्त्र को बिगाड़ने वाली, हमारी स्वाभाविक रुचि को खराब करने वाली और सब प्रकार की दुर्बलता, रोग तथा मृत्यु को बुलाने वाली वस्तुएं हैं। मक्खन, चीनी, और पिष्ट पदार्थ 'कार्बोनट्स'

अर्थात् फुफ्फुस में जलन पैदा करने वाले हैं। इनसे दिमाग का किसी प्रकार पोषण नहीं होता, तो भी इन पदार्थों को व्यर्थ महत्व दिया जाता है। और इसका परिणाम यह होता है कि आलस्य, नींद ओर थकावट हाथ जोड़कर मनुष्य के सामने खड़ी रहती है। ज्ञान–वृद्धि के लिये (जीवन शास्त्र के अनुसार) आवश्यक अपना भक्ष्य निश्चित कीजिये ।

भारतवर्ष के साधुओं के समान 'साधुपुरुष' भारतवर्ष में ही विद्यमान है। जिस प्रकार तलैया के पानी पर हरीहरी काई फैली होती है उसी प्रकार सारे भारतवर्ष में साधु फैले हुए हैं और आज कल इनकी संख्या 52 लाख हो गया है। इनमें से कुछ साधू निस्सन्देह सरोवर की शोभा बढ़ाने वाले काई में कमल हैं। परन्तु उनमें से अधिकांश रोगोत्पादक काई या सिंवार ही हैं। पानी बहने दीजिये, राष्ट्र की प्रगति होने दीजिये, फिर देखिये, सारी काई या सिंवार आप ही आप बढ़ जायगी। ये साधू भारतवर्षीय इतिहास के अवनत काल के स्वाभाविक परिनाम हैं परन्तु इधर वर्तमान काल में सुधार के तत्व का सार गृहस्थाश्रमी स्त्री पुरुषों में प्रचार होकर जिस प्रकार उनकी रुचि और मन में परिवर्तन हो रहा है, उसी प्रकार उसका परिणाम साधुओं पर भी होता हुआ दीखता है। अब आजकल इस तरह के साधू उत्पन्न हो रहे हैं कि राष्ट्र वृक्ष पर उत्पन्न होने वाले परोपजीवी बांदे होने की अपेक्षा, चाहे वे और कुछ उपकार कर सकें या न कर सकें, मनसा वाचा कर्मणा राष्ट्र वृक्ष की खाद ही बनने की चेष्टा कर रहे है ।

आज तक भी गोता के लाखों भक्त केवल मुख से उद्योग की महती तथा निष्काम कर्म के तत्वों का पाठ ही किया करते थे परन्तु अब श्रीकृष्ण की जन्मभूमि में न्यूनाधिक प्रमाणसे वे उन्हें कार्यमें परिणत कर रहे हैं।

योगस्थः कुरु कर्माणि संगत्यक्त्वा धनंजय ।
सिध्यऽसिध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।

अ. गो. भ. 2.48

साधू और गृहस्थाश्रमों दोनों में, प्रबल भक्ति और तीव्र विवेक दिखायी पड़ता है और जिन जिनको भारतवर्ष की भीतरी और बाहरी, प्राचीन और अर्वाचीन स्थिति विदित है वे यह बात सहज में मालूम कर सकते हैं कि व्यावहारिक वेदान्त अथवा भक्तिपूर्वक कर्मयुक्त संन्यास ही शिक्षित भारतवर्ष का भावी धर्म है।

सच्ची भक्ति और सच्चे ज्ञान से सच्चा कर्म अलग नहीं किया जा सकता। श्रुति धर्म के अनुसार (व्यावहारिक वेदान्त के अनुसार) हमारी हर एक वासना, विचार और कार्य ईश्वर निमित्त किया हुआ यज्ञ है। वैदान्तिक परिभाषा के अनुसार देव' शब्द का अर्थ 'दीप्ति' और 'आयु देने वाली शक्ति है। उसी प्रकार (देव) देवता का अर्थ उस 'ईश्वरी शक्ति के विविध स्वरूप' होता है– फिर चाहे वह बाह्यशक्ति हो अथवा अनंतर्गत इन्द्रियशक्ति। अधिदैवतज्ञ शब्द ले आध्यात्मिक शब्द की तुलना करते हुए विदित होता है कि 'देवता' शब्द समष्टि रूप शक्तिवाचक है। चक्षुर्देवता सब प्राणियों के देखने की आदित्य नाम्नी शक्ति है। और इस विश्व का नेत्र जो सूर्य व शक्ति का चिन्ह (Symbol) है। इस्तेंद्रिय की देवता सब हाथों की शक्ति है और उस देवता को 'इन्द्र कहते हैं । पद देवता अर्थात् सब पावों की

जो शक्ति है उसे विष्णु कहते हैं। उसी प्रकार से अन्यान्य देवताओं के विषय में भी समझिये अब देवता प्रीत्यर्थ यज्ञ करनेसे अपने व्यक्ति विषयक इन्द्रियशक्तियों को तत्तत्समष्टि रूप शक्ति देवताओं के प्रति समर्पित करने का अर्थ है । **इन्द्र को बलिदान देने का मतलब है कि देश के सब हाथों के हितार्थ काम करना, आदित्य को बलिदान देना अर्थात् सब नेत्रों में जो ईश्वर का अस्तित्व है उसको जानना, सब नेत्रों का सम्मान करना, अपने अनुचित व्यवहार से किसी की दृष्टि को कष्ट न देना, अपनी ओर देखने वालों को प्रेमस्मित आशीर्वाद देना, अपने नेत्र विश्व-चक्षु को इतनी अनन्य भक्ति ले अर्पण कर देना है कि अपना सब अकार नष्ट हो जाय और उससे अपने नेत्रों द्वारा वही विश्वचक्षु परमात्मा सदा प्रकाशमान रहे। वृहस्पति का बलिदान देने से देश-के सब शिरों को अपना शिर (वृद्धि, विचार) अर्पण कर देने का मतलब है, अथवा अपने देश बान्धवों के हितसंबंध में अपना स्वार्थ लीन करते हुए उनकी सुस्थिति में आनन्द अनुभव कर इस प्रकार से देशहित की साधना करनी है कि मैं और 'मेरे देशबान्धव' ऐसा भेद भाव ही न रह जाय ।**

तात्पर्य, सब देश बान्धवों को एक ही समझकर अपने क्षुद्र अहंकार को नष्ट करते हुए सबकी आत्मा बन इस तत्त्व को कि, मेरे अड़ोसी पड़ोसी और वन्धु भगिनी आदि मैं ही हूँ। कार्य में परिणत करने का नाम ही यज्ञ है। यह यज्ञ कैसी है? जिस प्रकार से सूली पर चढ़ने के उपरान्त ईसा की मानुषदेह दिव्य स्वरूप में पुनरुत्थित हुई उसी प्रकार से देहात्मत्व – (देहबुद्धि) का वध करने के पश्चात् अपना भी विश्वात्म रूप में पुनरुत्थान होना यही इस यज्ञ का फल है । इसी के एक अंग को भक्ति और दूसरे अंग को ज्ञान कहते हैं ।

प्रेम सर्मपण

बरवा–छन्द

मम सर्व स्वीकारहु, कृपानिधान !
अपहुँ दोउ कर जोरे, श्री भगवान !
स्वीकार हाथनको, हे महाराज ।
तुव सेवा के कारण, अप्यों आज ।
हृदय मम स्वीकारहु, हे निष्काम !
तवु मूरति हिय भासे, सुखको धाम ।
मोर नैन स्वीकारहु, हे जगदीस !
भक्ति धुंध होई जॉय, नवाव सीस ।
चित्त मोर स्वीकारहु, अहो सुजान !
मंदिर होय तुम्हार, हेतु नहिं आन ।
अस न रहे कछु मोपै, होय जो मोर ।
तुमहीमें सब फुरै, न दूसरि ठौर ।

यह प्रेमार्पण पूर्णतया साध्य होनेके पश्चात ''तत्वमसि" वह तुम हो, इस तत्वका आनन्ददायक अनुभव प्राप्त होता है ।

क्या आप देशाभिमानी और देशभक्त होना चाहते है ? यदि चाहते हैं तो अपने देश और देशबन्धुओं से प्रेम कीजिये। अपने देशबन्धुओं के हृदय में अपना हृदय मिला दीजिये। अपने और उनके बीच 'अहंकार' रूपी परदे को बिलकुल स्थान मत दीजिये। स्वदेशहित के लिये जान हथेली पर लिये हुए परमार्थिक वीर बनिये। क्षुद्र अहंकार छोड़कर देश से आपका तादात्म्य हो जाने पर आपके मन में जो विचार

उत्पन्न होगा वह आपका नहीं सारे देश का होगा। आप आगे बढ़िये, देखिये, सारा देश आपके पीछे पीछे चलेगा। आपके मन में आरोग्य का विचार आते ही आपके देशबन्धु नीरोगी और बलवान् हो जायेंगे। आपकी शक्ति उनकी रग रगमें फैल जायेगी। अपने हृदय में यह भाव उत्पन्न कीजिये कि 'मैं देश हूँ – भारत हूँ – भारतवर्ष हूँ । भारत की भूमि ही मेरा शरीर है, 'कॅमोरिन' मेरे पैर हैं, हिमालय मेरा शिर है, मेरे सिर की चोटी से ही ब्रह्मपुत्रा और सिंधु निकली हैं, विन्ध्याचल मेरी कमर में बँधा हुआ कमरबन्द है, 'कारोमाण्डेल' और मला–बार मेरा दाहिना और बांया पैर है, मैं समस्त भारतवर्ष हूं! भारत की पूर्व और पश्चिम दिशाएं मेरी दाहिनी और बाई भुजाएं हैं और समस्त मानवजाति को आलिंगन करने के लिये मैंने अपनी दोनों भुजाएँ फैला दी हैं। मेरा प्रेम विश्वव्यापक है ! अहा हा ! मेरे शरीर की गठन ही इस प्रकार की है! खड़ा होकर अनन्त दिक्काल की ओर अपनी दृष्टि दौड़ाता हूँ परन्तु मैं अन्तरात्मा विश्वात्मा हूँ। मैं जब चलता हूँ तो मालूम होता है कि सारा भारत चलता है, बोलता हूँ तो भारतवर्ष बोलता है और श्वास लेता हूँ तो सारा देश श्वास लेता है। मैं भारत हूँ, शंकर हूँ, शिव हूँ, यह भाव हृदय में उत्पन्न होना ही स्वदेशाभिमान है और इसी को व्यावहारिक वेदान्त कहते हैं।

❖

इन्द्र की भेंट चढ़ाने का अर्थ यह है कि देश के सारे हाथों के उपकारार्थ श्रम किया जाय। व्यष्टिमात्र समुचित आहार को योग्य रीति से ग्रहण करके ही पोषित होता है, हाथ और उसके स्नायु काम करने ही से पुष्ट होते और बढ़ते हैं। इस प्रकार इन्द्र का हव्य दान देने से तात्पर्य है भारतवर्ष की क्षुधा मिटाना जो कि लाखों गरीब आदमी यहां बेरोजगार हैं, उनके लिए जीविका ढूँढ़ी जाय और उन्हें किसी धन्धे में लगा दिया जाय। हाँ, इन्द्र को जब इस प्रकार का हव्य मिल जायेगा, तो देश भर में समृद्धि छा जायेगी। जिस समय सारे हाथ काम में लग जायेंगे, तब दरिद्रता बेचारी कहाँ रह सकती है ? इंग्लैंड में फसल बहुत कम होती है, फिर भी देश धनधान्यपूर्ण है। इसका कारण यह है कि हस्त देवता (इन्द्र) को वहाँ कला–कौशल और उद्योग–धन्धों के अन्न से इतना तृप्त कर दिया जाता है कि उसे अजीर्ण तक होने लगा है। सब हाथों को मिलाजुलाकर सबके हित के लिए काम में लगाना ही इन्द्रयज्ञ है। विश्व के हित में सब मस्तिष्कों का मिल जाना ही बृहस्पति यज्ञ है। हृदय के देवता चन्द्रमा का यज्ञ है कि हमे सब अपने हृदय को एक कर लें। इसी प्रकार अन्य देवताओं के लिए यज्ञ किये जाते हैं।

भारत सरकार को
प्रेषित प्रस्ताव

दिव्य ज्योति पुरुष को 150 वीं जयंती पर स्मरणात्मक श्रद्धांजलि

तुलसी मानस प्रतिष्ठान और इसकी गतिविधियां :

वर्ष 1974 (संवत 2031) में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रामचरित मानस की रचना के 400 वर्ष पूरे होने पर, मानस की चार सौ वीं जयंती पूरे देश में उत्साह के साथ मनाई गई थी। मध्य प्रदेश में रामचरित मानस चतुश्शदी समारोह समिति का गठन और पंजीकरण 8 जून 1970 को किया गया (पंजीकरण क्रमांक 1726)। चतुश्शती समारोह की समाप्ति के पश्चात् प्रासंगिकता की दृष्टि से वर्ष 2004 में इसमें परिवर्तन किया गया तथा समिति का नाम बदलकर तुलसी मानस प्रतिष्ठान, मध्य प्रदेश कर दिया गया।

प्रतिष्ठान का उद्देश्य भगवान श्री राम और मानस के बीच के लोकमान्य सुसंगत प्रसंग पर आधारित श्री राम संग्रहालय का निर्माण करना है, जो तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल के परिसर में बनाया जाएगा तथा मानस भवन में रामायण केन्द्र की शिलाभित्ति सुसंस्थापित की जाएगी। नवीनतम् गतिविधियों में, मार्च 2024 में, तुलसी मानस प्रतिष्ठान द्वारा दो दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसमें देश–विदेश के 100 से अधिक विद्वानों ने भाग लिया। उद्घाटन दिवस पर लगभग 50 विद्वानों ने रामायण पर शोध पत्र प्रस्तुत किए।

प्रतिष्ठान की प्रबंधन समिति के सदस्य है :

- संरक्षक (पदेन)
  मा. श्री मंगू भाई छगन भाई पटेल
  (महामहिम राज्यपाल मध्यप्रदेश)
- अध्यक्ष (पदेन)
  मा. श्री मोहन यादव
  (मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश)
- उपाध्यक्ष (पदेन)
  मा. श्री उदय प्रताप सिंह
  (शालेय शिक्षा मंत्री, मध्यप्रदेश)
- उपाध्यक्ष (पदेन)
  मा. श्री धर्मेन्द्र सिंह लोधी
  (संस्कृति मंत्री, मध्यप्रदेश)
- कार्याध्यक्ष
  श्री रघुनंदन शर्मा
- संयोजक
  श्री राजेन्द्र शर्मा
- सचिव
  श्री कैलाश जोशी
- कोषाध्यक्ष
  श्री विजय अग्रवाल
- प्रधान संपादक एवं सदस्य
  श्री प्रभुदयाल मिश्र
- सहसचिव एवं संपादक
  श्री देवेन्द्र कुमार रावत

निर्वाचित पदाधिकारी एवं सदस्य

- श्री विजय दत्त श्रीधर
- श्री सुरेश पचौरी
- श्री रमेश शर्मा
- श्री माधव सिंह दांगी
- श्री कमलेश जैमिनी
- श्री रामगिरीश द्विवेदी
- श्री राजेश हिंगोरानी
- श्री दीपक मेहता
- श्री दीपक शर्मा
- श्री महेश सक्सेना
- श्रीमती सुशीला शुक्ला
- संचालक, संस्कृति संचालनालय
  (सदस्य पदेन)

स्थायी आमंत्रित सदस्य

- श्री जयनारयण गुप्ता
- श्री बी.के. सांघी
- श्री पूजा सक्सेना

विशेष आमंत्रित सदस्य

- श्रीमती कृष्णा श्रीवास्तव
- डॉ. सुरेन्द्र कुलश्रेष्ठ
- पं. ओमप्रकाश शास्त्री
- श्री महेश दुबे

प्रस्तावना

20वीं सदी के आरंभ में, भारत ने उल्लेखनीय उन आध्यात्मिक गुरुओं का उदय देखा, जिन्होंने राष्ट्र के आध्यात्मिक परिदृश्य पर एक अमिट छाप छोड़ी। इन आध्यात्मिक ज्योति पुरुषों, जिन्हें गुरु या संत कहा जाता है, ने आध्यात्मिक दर्शन, आंतरिक परिवर्तन और दिव्यता की गहरी समझ की दिशा में व्यक्तियों को मार्गदर्शन और प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस अवधि के दौरान, भारत ने आध्यात्मिकता में पुनर्जागरण का नवीन अनुभव किया, क्योंकि लोगों को आधुनिकता की चुनौतियों के बीच प्रशांति और अर्थवत्ता की तलाश थी। 20वीं सदी के प्रारम्भिक

काल के आध्यात्मिक गुरु आध्यात्मिक शिक्षाओं और जीवन की उत्कट पहचान कर प्रमुखता में आए, जिसकी सामान्य धार आम जनता के साथ प्रवाहित हुई । ऐसी ही एक प्रमुख विभूति स्वामी विवेकानंद थे, जिनकी वेदांत की शिक्षाएँ और आध्यात्मिकता में उनकी गहन अंतर्दृष्टि ने भारत और विदेशों में दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया। एक अन्य उल्लेखनीय आध्यात्मिक गुरु परमहंस योगानंद थे, जो सेल्फ–रियलाइजेशन फेलोशिप के संस्थापक थे, जिन्होंने क्रिया योग की प्राचीन पद्धति को पश्चिम में प्रसारित किया और सभी धर्मों की एकता पर जोर दिया। श्री रमण महर्षि, जो आत्मान्वेषण और अद्वैत वेदांत के मार्ग पर अपनी शिक्षाओं के लिए जाने जाते हैं, ने तिरुवन्नामलाई में अपने आश्रम में जीवन के सभी क्षेत्रों से साधकों को आकर्षित किया।

आत्म–साक्षात्कार और स्वयं की प्रकृति पर उनकी शिक्षाओं का उस समय के आध्यात्मिक साधकों पर गहरा प्रभाव पड़ा। श्री अरबिंदो की 'द लाइफ डिवाइन' आध्यात्मिक विकास के माध्यम से पृथ्वी पर दिव्य जीवन के दर्शन की खोज के लिए जानी जाती है, जो समग्र दृष्टिकोण और पृथ्वी पर एक पूर्ण और आध्यात्मिक रूप से परिवर्तित जीवन के उद्देश्य पर जोर देती है। 20वीं सदी की शुरुआत के इन आध्यात्मिक गुरुओं ने न केवल व्यक्तियों को अपनी आध्यात्मिक यात्रा शुरू करने के लिए प्रेरित किया, बल्कि प्राचीन आध्यात्मिक परंपराओं को संरक्षित और पुनर्जीवित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी शिक्षाएँ आज भी लाखों लोगों का मार्गदर्शन और प्रेरणा देती हैं, जो ज्ञान, करुणा और आध्यात्मिक जागृति की एक स्थायी विरासत छोड़ती हैं।

स्वामी राम तीर्थ उस समय के प्रमुख आध्यात्मिक गुरुओं में से एक अत्यंत विलक्षण मार्गदर्शक के रूप में उभरे। वेदांत और आध्यात्मिकता पर अपनी गहन शिक्षाओं के लिए जाने जाने वाले, स्वामी राम तीर्थ ने अपनी वाक्पटुता और अप्रतिम ज्ञान से विश्व भर के श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। उन्होंने सभी धर्मों की एकता और प्रेम, शांति और आत्म–साक्षात्कार के महत्व पर जोर दिया। उनकी शिक्षाएँ आज भी आध्यात्मिक जागृति के मार्ग पर साधकों को प्रेरित और मार्गदर्शन करती हैं।

उद्देश्य

आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, सामाजिक और भावनात्मक पहलुओं पर जोर देना आम लोगों के नैतिक उत्थान और उन्हें उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक रचनात्मक कार्यों के लिए प्रेरित करना तुलसी साहित्य में जनता की आस्था को मजबूत करने के लिए राज्य में मानस केंद्र/मानस मंडल की स्थापना करना।

मानसिक विस्तार में लगे संगठनों से संपर्क स्थापित करना और उनके साथ निरंतर सहयोग करना।

आदिवासी क्षेत्रों में मानस के प्रचार–प्रसार के लिए विशेष प्रयास करना और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक स्थानीय संगठनों का गठन करना।



देवेन्द्र कुमार रावत

संतों की वाणी में निहित हैं एकता के सूत्र

अनेकता में एकता भारत की विशेषता है। लेकिन एकत्व की जड़े और सुदृढ़ करने के बाह्य प्रयासों के साथ–साथ आवश्यक है कि हम आंतरिक रूप से संस्कृति की उस गहराई तक भी पहुँचे जहाँ से एकत्व के वटवृक्ष को उर्जा मिलती है। अन्यथा विघटनकारी शक्तियाँ हमारी एकता को खण्डित करने का प्रयास करती हैं।

इस संदर्भ में हमारे धर्मग्रंथों के कुछ उदाहरण देकर जैसे ढ़ोल, गंवार, सूद्र, पसु, नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी। अर्थात् ढ़ोल, गंवार, शूद्र, पशु और स्त्री ये सब ताड़ना अर्थात् दंड़ के अधिकारी है। ऐसी व्याख्या कर यह कोशिश भी की जाती रही हैं कि सनातन धर्म में नारी निंदा, ऊँच–नीच जैसे कुछ प्रसंग हैं जो सामाजिक न्याय के विपरीत हैं। वे हमारे धर्म ग्रंथों की सतही स्तर पर अपनी सीमित दृष्टि से व्याख्या करते हैं तब उन्हें न तो ऋषियों की भाषा और न ही उनकी भावाभिव्यक्ति का बोध होता है न ही किसी भी शास्त्र का संपूर्ण अध्ययन। ये आलोचक केवल धर्मग्रंथों के कुछ पृष्ठों को ही पढ़कर स्वयं को विद्वान होने का दंभ भरते हैं जबकि हमारे धर्मशास्त्र कहते हैं कि जिन विद्वानों ने संपूर्ण शास्त्रों का भलीभांति अध्ययन भी किया है उन्हें भी कुछ कहने से पहले "शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ' अर्थात् भलीभांति चिन्तन किये हुए शास्त्र को भी बार–बार देखते रहना चाहिये। जबकि ईश्वर की कृपा से जो हमें मानव शरीर मिला है। इससे उर्ध्वगामी स्थिति प्राप्त करने के लिए विधाता ने हमारे ज्ञान–विवेक की परीक्षा हेतु ही इस जगत को जड़–चेतन गुण दोष मय रचा है। अतःशास्त्रों में वर्णित स्त्री–पुरुषों में किसी के दोषों का जो वर्णन

आया है तो उसका आशय व्यक्तियों से नहीं उनके दोषों से बचने की सलाह है। जैसे गोस्वामीजी ने नारी के दो स्वरूप बताये हैं

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ,
नारि वर्ग जानतु सब कोउ।
पुनि रघुवीरहिं भगति पिआरी,
माया खलु नर्तकी बिचारी ।

अर्थात् माया और भक्ति ये दोनों ही स्त्री वर्ग की है। यह सब कोई जानते हैं। फिर श्री रघुवीर को भक्ति प्यारी है। माया बेचारी तो नाचने वाली नटिनी मात्र है। अतः भक्ति रूपी नारी की जहां वन्दना है तो माया रूपी नारी की निन्दा की है। तो वहीं 'सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना बैठि बरासन करहिं पुराना' अर्थात् शूद्र नाना प्रकार के जप, तप और व्रत करते हैं तथा ऊँचे आसन पर पर बैठकर पुराण कहते हैं इस वर्णन से तुलसी की आलोचना करने वालों की आलोचना तब व्यर्थ हो जाती है जब मनुष्यों की कौन कहें सबसे अधम योनि के कागभुशुण्डिजी से स्वयं देवाधिदेव नीलाचंल पर्वत पर एक श्रोता के रूप में श्रीराम की कथा सुनते हैं।

अतः स्पष्ट है ऋषियों को वाणी को गंभीरता से जानने और समझने की आवश्यकता है, अन्यथा हम अर्थ का अनर्थ कर देते हैं। इसी संदर्भ में हमारे धर्मशास्त्रों में आयी कुछ प्रतिबंधात्मक विधानों की भी वे आलोचना करते समय यह भूल जाते हैं कि समाज की व्यवस्था सुचारू रूप से संचालित होती रहे, इसके लिए कुछ प्रतिबन्ध परम आवश्यक है। इनके अभाव में इतिहास की प्रयोगशाला से सिद्ध हुआ है कि जब जब हमारी स्वतंत्रता स्वच्छन्दता में बदल गयी है तब–तब असंयमित जीवनशैली के कारण संसार को विनासकारी अस्त्र–शस्त्रों से अधिक घातक परिणाम भोगने पड़े हैं।

वहीं यह भी अनुभव में आया है कि हमारे धर्मशास्त्रों में वर्णित जिस आचार–विचार और व्यवहार को हमने वैश्विक स्तर पर जब भी उद्घोष किया है तब उतनी ही प्रतिरोध की तीव्र ध्वनि भी मुखरित हुई है। ये आचार विचारहीन शक्तियां विशेष अवसरों पर अपनी मंथरा मति के कारण सुख, समृद्धि के पर्याय रामराज्य की स्थापना में बाधक बनती हैं।

वैसे यह हमारी परीक्षा की भी घड़ी होती है और यह भी देखा गया कि प्रारम्भिक रूप में भले ही हम अपने प्रयासों में असफल हुये हैं। लेकिन हमने अपनी हर असफलता से सीखा है और समय पाकर अपनी संस्कृति का परिष्कृत रूप संसार के समक्ष भी रखा है। जैसे अतीत में त्रेतायुग में वर्णित महाराज श्री दशरथ द्वारा अयोध्या में सुख संपत्ति के पर्याय श्रीरामराज्य की स्थापना में हुआ था। तब मंथरा को रामतिलक 'सुनि भा उर दाहू' अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी के राजतिलक की बात सुनते ही उसका हृदय जल उठा था।

परिणाम स्वरूप रामराज्य की स्थापना कुछ समय के लिए टल गयी थी, किन्तु 14 वर्ष बाद अयोध्या में श्री भरत–भाव से पुनः रामराज्य की स्थापना हो सकी थी। ठीक ऐसे ही वर्तमान में भी जाति–पाति में परस्पर विद्वेष की भावना कर एक सोची–समझी रणनीति के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक एकता को विखण्डित करने के प्रयास

किये जा रहे हैं। जिसे हमें गंभीरता से लेना होगा। तथा एकमत होकर बौद्धिक स्तर पर कुशलता से उत्तर भी देने होगें क्योंकि कि विश्व कल्याण की कामना करने वाला एकमात्र हमारा ही देश है। यही वह देश है जिसके धर्मशास्त्रों में केवल भारत ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व की पीड़ा को पृथ्वी ने व्यक्त किया है और उस पीड़ा को दूर करने स्वयं परमात्मा को इस धरा धाम पर अवतरित होते हैं अतः इस संदर्भ में हमारे धर्मग्रंथों में मुख्यतः श्रीमद्भगवतगीता, श्रीरामचरितमानस पुराणों, उपनिषदों आदि में वर्णित समस्त जड़–चेतन के कल्याण की कामना को आद्य शंकराचार्य, स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, युग तुलसी पं. रामकिंकर उपाध्याय जैसे महापुरूषों ने विश्व स्तर पर रखा है।

अब पुनः उसे संसार के समक्ष प्रस्तुत करने का समय आ गया है। विचारणीय यह है कि हम उसे भी क्यों विस्मृत कर बैठे? विवेकानंदजी ने तो हमारी संस्कृति में बाह्य रूप से दिखने वाले जाति वर्ग भेद के संदर्भ में कहा है कि हमारी संस्कृति में तो आश्रय दोष से बचने के लिए ही स्वच्छता के आधार पर कुछ दूरियां बनाई थी, पर ये छुआछूत का कुसंस्कार नहीं था किन्तु हमने अपनी सीमित सोच से व्यक्तियों को ऊंच–नीच में बांटने लग गये। जबकि कोरोना काल की संक्रामक बीमारी ने इसी दोष से बचने के लिए विश्व को भली–भाँति समझा दिया कि दो गज की दूरी, नाक, कान और मुंह पर मास्क का प्रयोग आश्रय दोष से बचने में रामबाण औषधि सिद्ध हुई है। इसलिए हमारे धर्मशास्त्रों में आचारः परमो धर्मः कहा गया है।

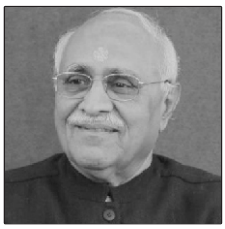
इसी संदर्भ में श्रीमद्भागवतगीता में चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारव्ययम् अर्थात् भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि प्रकृति के तीनों गुणों और उनसे सम्बद्ध कर्मों के अनुसार मेरे द्वारा चार विभाग रचे गये हैं। यद्यपि मैं इस व्यवस्था का स्रष्टा हूँ किन्तु इतने पर भी मैं अकर्त्ता हूँ। इसलिए स्पष्ट है कि भारतीय समाज के चारों वर्ण गुण और कर्म के आधार पर विभाजित है ईश्वर की प्राप्ति को लेकर इनमें किसी भी प्रकार का जातिगत भेद विभेद नहीं है। हमारी संस्कृति में तो शबरी, निषाद, केवट, रैदास जैसे भक्तों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है अतः स्पष्ट है कि जो भगवान के भक्त है वे इस चातुर्वण्य प्रणाली से परे होते हैं। इसी तरह विश्ववंद्य आदिशंकराचार्य जी के अद्वेत वेदान्त में भी सभी स्त्री, पुरूष तथा अन्य धर्मोनुयायी भी बिना किसी संदेह के उनके सिद्धांतों का अनुसरण कर सकते हैं।

इसी संदर्भ में स्वामी राम तीर्थ कहते हैं, धर्म अनेक नहीं एक है यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो धर्म का अर्थ है उस अज्ञात का मन वाणी से अगोचर का साक्षात्कार जहाँ न जाति–पाति रहती है और न रंग न रूप, जहाँ न मतमतान्तर रहते हैं न सिद्धांत और उपसिद्धांत न मन वाणी, न देशकाल और न कार्य कारण जहाँ शब्द की पहुँच नहीं हो सकती उसका साक्षात्कार ही धर्म है, क्या इसमें कोई रहस्य है ? नहीं बिलकुल नहीं। युग तुलसी पद्मभूषण पंडित श्रीरामकिंकर उपाध्याय जी ने भी ऐसे सभी प्रसंगों का आध्यात्मिक स्तर पर उचित समाधान दिया हैं

लेकिन लगता है हम सबने न तो उन्हें पढ़ा है और न जानने की कोशिश की है। जबकि गोस्वामीजी ने भी "सीय राम मय सब जग जानी" कहकर संपूर्ण जगत को अपने आराध्यमय देखने की दृष्टि हमें दी है तथा गुण–दोषमय इस जगत में संत–असंत, भक्ति–माया रूपी नारी, स्त्री–पुरूष का जो वर्णन किया है। इसमें वे हमसे अपेक्षा करते हैं कि 'संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार' अर्थात् तब हमें संत रूपी हंस की तरह दोष रूपी जल को छोड़कर गुण रूपी दूध को ही ग्रहण करना चाहिए।

लेकिन हमारे अपने अज्ञान के प्रभाव से हमारी दोष दृष्टि यह भेद नहीं कर पाती है, तो यह हमारा ही भ्रम है। भगवान शिव पार्वती से यही कहते है 'निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी, प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी' अर्थात् अज्ञानी मनुष्य अपने भ्रम को तो नहीं समझते नहीं और वे मूर्ख प्रभु श्रीरामचन्द्रजी पर उसका आरोप करते हैं। ऐसे ही धर्मशास्त्रों में वर्णित विप्र पूजा के प्रसंगों को लेकर तुलसी पर मनुवादी, ब्राह्मणवादी या पुरूषप्रधान कहकर आलोचना करने वाले ये भूल जाते हैं कि तुलसी ने तो यह भी लिखा है "परद्रोही परदारस्थ परधन परअपराध ते नर पांवर पापमय देह धरे मनुजात" अर्थात् सभी पुरूष जिनका कामक्रोध और लोभ पर नियंत्रण नहीं है, वे मनुष्य शरीर के होते हुए भी राक्षस है और जो श्रुति मार्ग के साधक है और जिन्होंने शास्त्रों का गंभीर अध्ययन किया है वे ब्राह्मण वंदना के योग्य है। वे लिखते है बन्दउँ प्रथम मही सुर चरना, मोह जनित संशय सब हरना अर्थात् ब्राह्मणों द्वारा अज्ञान (मोह) दूर करने का दायित्व होने से वे प्रथम पूज्यनीय हैं इसलिए सनातन धर्म में ज्ञान–प्रकाश के स्रोत होने से ही उनकी श्रेष्ठता है तो वहीं मोह ग्रस्त ब्राह्मण विप्र निरच्छर लोलुप कामी कहकर इनकी निंदा भी की है। तब आलोचना करने का क्या औचित्य है? क्योंकि बिना किसी परीक्षा उर्त्तीण किये जब किसी भी पद पर बैठने की योग्यता नहीं मिलती है तब व्यासपीठ की भी एक मर्यादा है जो तप, त्याग, स्वाध्याय, साधना के स्तर पर श्रेष्ठ है वही विरला ही शास्त्रों के संबंध में कुछ कहने का अधिकारी हो सकता है। अतः मानस में आये संपूर्ण प्रसंगों को व्यापक दृष्टि से देखने की आवश्यकता है। तभी हम संतों की समदृष्टि में निहित विश्व कल्याण की कामना को सही अर्थ में समझकर अपनी अभेद दृष्टि से हमारी एकता को और मजबूती प्रदान कर सकते हैं। ऐसा समझने से ही भेद समाप्त होगें और हमारी सांस्कृतिक, धार्मिक एकता की जड़ें मजबूत होगी।

संपादक, तुलसी मानस भारती, भोपाल मो. 9893119507



रघुनंदन शर्मा

सीय राम मय सब जग जानी

श्रीराम लक्ष्मण जानकी जी कुछ दिन वाल्मीकि जी के आश्रम में व्यतीत करने के पश्चात् अत्यन्त संकोच के साथ बोले कि हे मुनिवर! आपके सान्निध्य में अनेक विद्वता से परिपूर्ण आप्त वचन सुनने को मिले। मैं आपके अनुभवों से अत्यधिक लाभान्वित हुआ। अब कृपा करके मुझे ऐसा स्थान बतायें जहाँ मैं अपने छोटे भ्राता एवं पत्नी के साथ कुटिया बनाकर थोड़ा समय व्यतीत करूँ। वाल्मीकिजी ने मुस्कुराकर कहा कि हे रघुकुल की पताका श्रीराम। आपने सहज सरल स्वभाव के अनुकूल ही इतनी मधुर वाणी से रहने का स्थान पूछा है, यह स्वाभावतः आप के ही अनुरूप है और वे भावुक होकर कहने लगे।

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की।।
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुरकाज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी।।

अयोध्याकाण्ड –125/5

हे राम! आप वेदों की मर्यादा की रक्षा करने वाले हैं। और आपकी भार्या जानकीजी तो साक्षात माया स्वरूप ही हैं। जो आपकी इच्छा अथवा संकेत पाकर जगत की रचना करती है, जगत का पालन करती है तथा संहार करने की शक्ति रखती हैं। आपके साथ नित्य पल–पल चौकन्ने रहने वाले लघु भ्राता लक्ष्मण हजार फन के स्वामी शेषनाग हैं जिन्होंने अपने सुडौल, सशक्त मस्तक पर पृथ्वी को धारण किया हुआ हैः वे ही चराचर के स्वामी है। देवताओं के कार्य की सिद्धि करने के लिये आपने मनुष्य रूप में राजा का शरीर धारण किया है। जो दुष्ट राक्षसों की सेना का विनाश करने के लिये ही वन में निकले हैं। त्रिकालदर्शी महान तपस्वी ऋषि पुंगव

वाल्मीकिजी ने अपनी अर्न्तदृष्टि से तीनों के यथार्थ जीवन तथा हेतु को जान लिया। श्रीराम के सच्चे स्वरूप को जानकर उन्हें यह बता दिया कि आप भले ही नर रूप में अपनी लीला करें किन्तु यह मुझसे छिपी नहीं रह सकती। मैं आपकी उस परमेश्वरता को भी जानता हूँ जिसमें आपने धरा पर अवतरित होने का संकल्प लिया है श्रीराम के इस प्रश्न पर कि मुझे कहाँ कुटिया बनाकर रहना चाहिये ? उन्होंने श्रीराम को इस प्रश्न के यथार्थ भाव से अवगत करा दिया कि आप समस्त ब्राह्मण्ड के स्वामी है तथा रहने का स्थान मुझसे कैसे पूछते हैं ? इतना सब कहने के पश्चात अत्यन्त विन्रमता के साथ सौम्य व्यंग्य करते हुए मुनिवर श्रीराम से ही प्रश्न करते हैं कि अपनी बतायें कि आप कहाँ नहीं हैं ? गोस्वामी जी ने इस हास्य व्यंग्य को जो शब्द दिये हैं वे इस प्रकार है–

पूंछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहि कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ।।

अयोध्याकाण्ड–127

जो आप के बारे में नहीं जानता उससे पूछते तो ठीक, किन्तु जो आपके सारे मर्म को जानता है, आप उसी से पूछा रहे हैं कि मैं कहाँ रहूँ ? किन्तु मैं आपसे अत्यन्त संकोच के साथ पूछ रहा हूँ कि आप इस संसार में मुझे ऐसी जगह बताएँ जहाँ आप नहीं है, यदि ऐसी जगह आपने बतादी तो मैं भी वह स्थान आपको बात दूँगा। जो आपकी उपस्थिति से रिक्त है वह ही आपके रहने का उत्तम स्थान है। यह कहकर गोस्वामी जी ने अपने आराध्य श्रीराम को जगत के रचने वाले तथा सर्वत्र निवास करने वाले उस ब्रह्म के रूप में निरूपित किया है जो सृष्टि के कण–कण में व्याप्त हैं। संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं है। जहाँ मायापति निवास न करते हों। मानस में गोस्वामीजी ने यह सुप्रसिद्ध चौपाई पूर्व में ही लिख दी कि –

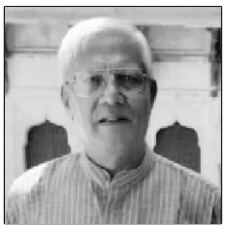
सीयराम मय सब जग जानी।
करहूँ प्रणाम जोरि जुग पानी।।

कार्याध्यक्ष, तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

राम तुम्हें बताता है कि तुम्हारे शास्त्रों में जो यह लिखा है कि यज्ञ के समय देवता प्रत्यक्ष मूर्तिमान हो जाते हैं, यह बात अक्षरशः ठीक है। परन्तु इससे तो केवल यही सिद्ध होती है कि सामुदायिक एकाग्रता में बड़ा भारी प्रभाव है। मनोविज्ञान की आधुनिक खोजों से यह सिद्ध हुआ है कि एकाग्रता का प्रभाव किसी अवसर पर उपस्थित एक हृदय व्यक्तियों को संख्या के वर्ग के अनुपात में बढ़ाता हैं। यही सत्संग की महिमा हैं। यदि अकेला राम किसी कल्पना को मूर्तिमान् कर, सकता है, तो एक–हृदय लाखों लोग एक ही मंत्र को जपने वाले एक ही स्वरूप का ध्यान करने वाले कैसे उस कल्पना को मूर्तिमान किए बिना रह सकते है ? परन्तु इससे क्या सिद्ध होता है ?

इससे सिद्ध होता है कि तुम्हारा सर्वमय आत्मा ही सब देवताओं का पिता और कर्ता धर्ता हैं परन्तु यही देवता जब तुम्हारे मन की कल्पना मात्र है।

संविधान दिवस पर
प्रसंगतः



विजयदत्त श्रीधर

भारतीय संविधान पर संस्कृति की शीतन छाँह

भारतीय ऋषि मनीषा ने प्रकृति से तादात्म्य–सम्पन्न जिस संस्कृति का निदर्शन किया है वह सह–अस्तित्व, समन्वय और सामंजस्य के बोध से सम्पृक्त आदर्श मनुष्यता की संपोषक है। इस तथ्य से भारतीय संविधान के निर्माता भली–भाँति अवगत थे। यही कारण है कि संविधान की पोथी को सँवारते हुए आचार्य नन्दलाल बसु ने उसे संस्कृति की शीतल छाँह से आच्छादित किया है।

भारतीय संविधान के 75 वर्ष पूरे होने के प्रसंग में भारतीय संविधान की पोथी पर ध्यान जाना स्वाभाविक है। भारत की उत्कृष्ट मेधा के 288/299 प्रतिनिधियों ने हमारे संविधान की संरचना की। यह विश्व के श्रेष्ठ संविधानों में से एक है। इसकी सफलता और सार्थकता का प्रामाणिक साक्ष्य यही है कि भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। लोकतांत्रिक प्रणाली के संचालन में भारत ने अपनी दक्षता और परिपक्वता का सतत प्रदर्शन किया है। सामान्य अर्थों में संविधान, साहित्य के समान सरस विषय नहीं होता। यह तो राष्ट्र के विधि–विधान, आचरण, मान–मूल्य –मर्यादा, करणीय–अकरणीय का निदर्शन करता है। इस शब्द–सत्ता में हस्तक्षेप किए बिना, उस पर भारतीय संस्कृति और सभ्यता की शीतल छाँह आच्छादित करने का कार्य भारत के शीर्ष कलाविदों ने किया है। सर्व समादृत शांति निकेतन के कला–आचार्य नंदलाल वसु ने इस दायित्व का भली भाँति निर्वहन किया। उनके सुयोग्य शिष्य जबलपुर के व्योहार राममनोहर सिन्हा इसमें मुख्य सहयोगी थे।

माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान में उपलब्ध संविधान सभा के सदस्य कीर्तिशेष हरिविष्णु कामथ से प्राप्त

भारतीय संविधान की प्रथम मुद्रित प्रति का अवलोकन करें तो सहज ही आभास हो जाता है कि यह केवल साज–सज्जा का प्रकरण नहीं है। भारत की आत्मा कलाकारों की कूचियों के माध्यम से उभरी है।

आरंभ में ही सारनाथ के अशोक स्तंभ की छवि को उकेरा गया है। सिंह की त्रिमूर्ति और 'सत्यमेव जयते' के उद्घोष के साथ, जिसे भारत ने राष्ट्रीय आदर्श के रूप में अंगीकार किया है। इसे भारतीय वाङ्मय के 'मुण्डकोपनिषद' से लिया गया है। प्रथम पृष्ठ पर मोअन–जोदड़ो काल के वृषभ का रेखांकन है। यह सिंधु घाटी की सभ्यता का प्रतीक है। तृतीय पृष्ठ पर वैदिक काल के गुरुकुल का दृश्यांकन है। प्रकारांतर से यह भारत की महान सांस्कृतिक विरासत का जयघोष है।

पृष्ठ छह पर रामायण काल उभरता है। इसमें भगवान श्रीराम की लंका विजय के उपरान्त सीताजी की मुक्ति का रेखांकन है।

पृष्ठ–17 पर महाभारत का वह विलक्षण दृश्य है जहाँ कुरुक्षेत्र में भगवान श्रीकृष्ण किंकर्त्तव्य–विमूढ़ अर्जुन को गीता का उपदेश दे रहे हैं। पृष्ठ–20 पर ध्यानमग्न तथागत बुद्ध और उनके शिष्य अंकित हैं, वहीं पृष्ठ–63 के चित्रांकन में तीर्थंकर महावीर दृष्टव्य हैं। पृष्ठ–98 पर सम्राट अशोक के काल में भारत और अन्यत्र बुद्ध धर्म के प्रचार का दृश्य है।

प्रत्येक अध्याय के आरंभ में ऐसे रेखाचित्रों का समावेश है, जिनमें संस्कृति के साथ–साथ जाग्रत इतिहास–बोध भी है। भागीरथ की तपस्या गंगावतरण (पृष्ठ 130), ज्ञान तीर्थ नालन्दा विश्वविद्यालय, सम्राट विक्रमादित्य का दरबार, नृत्यरत नटराज, छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह (पृष्ठ 141), टीपू सुलतान, वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई (पृष्ठ 144) का अंकन भारत की गौरव–गाथा प्रस्तुत करते हैं। उत्तुंग हिमालय (पृष्ठ 167), गहन महासागर (पृष्ठ 181) और विशाल मरुभूमि (पृष्ठ 168) के दृश्य भारत की भौगोलिक पहचान को परिभाषित करते हैं।

आधुनिक काल की परिघटनाएँ भी संविधान की पोथी पर उकेरी गई हैं। ये कालक्रम को अद्यतन बनाती हैं। महात्मा गांधी की दाण्डी यात्रा (पृष्ठ 149), जिसमें नमक सत्याग्रह के माध्यम से गांधीजी ने पराधीनता के अभिशाप के विरुद्ध जनमानस को झकझोरा था। देश–विभाजन से उपजे रक्तपात में बंगाल के नोआखाली में दंगे की आग को शांत करने में जुटे गांधी जी का चित्रण भी हुआ है (पृष्ठ 154)। ''तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा'' का रणघोष करने वाले नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और आजाद हिन्द फौज का चित्रांकन (पष्ठ 160) यह प्रकट करता है कि भारत की आजादी भारतीयों के बहुविध संघर्षों का प्रतिफल है। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने ही पहले पहल गांधी जी को 'हमारे राष्ट्रपिता' संबोधित किया था।

वाङ्मय की सूक्तियाँ जो भारत का पथ प्रदर्शन करती हैं। ऋषि मनीषा द्वारा प्रसूत वाङ्मय की सूक्तियाँ भारत का पथ प्रदर्शन करती हैं। समरसता, समन्वय, सामंजस्य, सह–अस्तित्व के बोध से सराबोर भारतीय संस्कृति सबके कल्याण की कामना में भरोसा रखती है। यही युगों से इन सूक्तियों की स्वीकार्यता और लोकमान्यता का आधार है। हमारी एक लोकप्रिय

प्रार्थना है –

असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्मा अमृतम्गमय।

इसमें असत् से सत् की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर प्रयाण का आह्वान है। वृहदारण्यक उपनिषद से इस सूक्ति को लिया गया है।

सर्वोच्च न्यायालय के प्रतीक चिह्न में आदर्श वाक्य अंकित है– 'यतो धर्मस्ततो जय।' यह सूक्ति श्रीमद्भागवद् गीता से उद्धृत की गई है।

भारत के दूरदर्शन का ध्येय वाक्य – 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' ऐसी ही अर्थवान सूक्ति है। इससे पवित्र और दोषरहित उद्घोष और क्या हो सकता है? जब भगवान बुद्ध के महाप्रयाण की बेला आई, उनके प्रिय शिष्य आनन्द ने कातर स्वर में पूछा – हमें कौन राह दिखाएगा? भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया – "अप्प दीपो भव।" (अपना दीपक आप बनो।)

उदारीकरण–संसारीकरण–बाजारीकरण और दूरसंचार क्रांति के इस युग में नारा उछला – 'ग्लोबल विलेज'। हमारी संस्कृति का आदि कालीन संदेश है – "वसुधैव कुटुम्बकम्।" समस्त वसुधा एक कुटुम्ब के समान है। तथाकथित आधुनिक सभ्यता वाले मानवता को खानों में बाँटते हैं। भारतीय संस्कृति सिखाती है – "आत्मवत् सर्वभूतेषु।" उन्हें रास्ता 'ग्लोबल पोजीशनिंग सिस्टम' (जीपीएस) दिखाता है। भारतीय मनीषा कहती है – महाजनो येन गतः स पंथः।

आधुनिक शिक्षालय विज्ञापनों से चलते हैं। मोटी मोटी फीस लिए बिना ज्ञान का दरवाजा खोलना स्वीकार नहीं करते। भारतीय मनीषा कहती है – "आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।" अच्छे विचार सब दिशाओं से आने दो। आधुनिक शिक्षा सर्वांगीण नहीं, किसी एक खाँचे में ढालती है। भारतीय मनीषा कहती है – "सा विद्या या विमुक्तये।" विद्या वह जो मुक्त करे।

शुभेच्छा की इससे श्रेष्ठ कामना क्या हो सकती है –

सर्वे भवन्तु सुखिनः,
सर्वे सन्तु निरामयाः,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,
मा कश्चिद् दुःख भाग्वतेत्।

आवश्यकता इस बात की है कि आधुनिकता के फेर में मूल मानवीयता की अनदेखी न हो। नया ज्ञान–विज्ञान सहर्ष स्वीकार। साथ ही अपनी संस्कृति पर गर्व करें और मन–वचन–कर्म में उसका अनुसरण करें। आधुनिकता का तात्पर्य अपनी जड़ों से कटना नहीं होता।

संस्थापक सप्रे संग्रहालय, भोपाल

स्मरण महर्षि अरविंद



रमेश शर्मा

स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और संत महर्षि अरविंद

स्वतंत्रता आँदोलन में जितनी महत्वपूर्ण भूमिका राजनेताओं की रही है उससे कई गुना अधिक योगदान उन संतों का है जो सीधा संघर्ष करके जेल भी गये और अपनी आत्मशक्ति से पूरी पीढ़ी को जागृत कर स्वाधीनता संग्राम के लिये प्रेरित किया । महर्षि अरविंद ऐसे ही महान सेनानी थे जो जेल भी गये और स्वतंत्रता संघर्ष के लिये युवाओं को तैयार भी किया ।

महर्षि अरविंद का वास्तविक नाम अरविंद घोष था। उनका जन्म 15 अगस्त 1872 को कलकत्ता के एक सम्पन्न परिवार में हुआ। पिता डॉक्टर कृष्ण धन घोष एक प्रतिष्ठित चिकित्सक और प्रभावशाली व्यक्ति थे लेकिन पूरी तरह पश्चिमी जीवन शैली में रचे बसे थे जबकि माता स्वर्णलता देवी भारतीय परंपराओं और आध्यात्मिक धारा के प्रति समर्पित स्वभाव की थीं। घर में दोनों प्रकार का वातावरण था। कृष्णधन जी भले पश्चिमी शैली के समर्थक थे पर पत्नि की सेवा पूजा और आध्यात्मिक परंपरा पालन में कोई हस्तक्षेप नहीं करते थे। इस मिले जुले वातावरण में बालक अरविंद ने आँख खोली। उनके मन मस्तिष्क पर दोनों प्रभाव थे। भारतीय विशेषताओं के भी और पश्चिमी प्रगति यात्रा के भी। पिता ने उन्हें पाँच वर्ष की आयु में दार्जिलिंग के अंग्रेजी स्कूल में और दो वर्ष बाद आगे की पढ़ाई के लिये लंदन भेजा। अरविंद जब पढ़ने लंदन जा रहे थे तब माँ ने भारतीय संस्कृति और दर्शन से संबंधित कुछ पुस्तकें उनके साथ रख दीं। अरविन्द अपनी पढ़ाई के साथ समय निकालकर माँ के द्वारा दीं गई पुस्तकों को पढ़ते। इंग्लैड में उनके रहने की व्यवस्था एक अंग्रेज परिवार में की गई थी। इस तरह उन्हें भारतीय दर्शन एवं संस्कृति के साथ यूरोपीय जीवनशैली का भी परिचय मिला। इसीलिये उनके जीवन में इन दोनों

साँस्कृतिक धाराओं का समन्वय देखने को मिलता है। पढ़ाई के दौरान ही लंदन में उनका परिचय बड़ौदा नरेश से हुआ। बड़ौदा नरेश युवा अरविंद घोष से प्रभावित हुए और उन्हें अपना निजी सचिव बनने प्रस्ताव रखा। जिसे अरविन्द घोष ने स्वीकार कर लिया। 1892 में पढ़ाई पूरी करके बड़ौदा आये। कुछ समय नरेश के निजी सचिव का कार्य किया फिर राजा की सहमति से बड़ौदा कॉलेज में प्रोफेसर और फिर वाइस प्रिंसीपल बने। इसके साथ ही भारतीय संस्कृति और पुरातन साहित्य का अध्ययन भी निरंतर रहा। वे 1896 से 1905 तक बड़ौदा में विभिन्न दायित्वों पर रहे। बड़ौदा में रहते हुये ही बंगाल के क्राँतिकारियों से उनका संपर्क बन गया था। उनके बड़े भाई बारिन घोष सुप्रसिद्ध क्राँतिकारी थे और अनुशीलन समिति में सक्रिय थे। उनके माध्यम से अरविंद भी 1902 में अनुशीलन समिति से जुड़ गये थे। इसीलिए अरविन्द जी बड़ौदा के महाविद्यालय में रहते हुये युवाओं को पश्चमी शिक्षा का अध्ययन तो कराते लेकिन व्यक्तित्व निर्माण के लिये स्वशिक्षा और स्वसंस्कृति पर गर्व करने का संदेश दिया करते थे। उनके द्वारा दी गई संस्कार और देशभक्ति की शिक्षा ने छात्रों में राष्ट्र भक्ति की ऐसी ज्योति जगाई थी कि उनमें से अधिकांश युवा आगे चलकर स्वतंत्रता आँदोलन में सहभागी बने। अरविन्द जी अपनी धुन में काम कर रहे थे कि 1905 में अंग्रेजों द्वारा बंगाल विभाजन की घोषणा हुई। इसका विरोध हुआ। अरविन्द जी बड़ौदा की नौकरी छोड़कर कलकत्ता आ गये और आँदोलन से जुड़ गये। गिरफ्तार हुये और जेल भेज दिये गये।

रिहाई के बाद पुनः पीढ़ी निर्माण में लग गये। साथ ही अपने जीवन यापन के लिये कलकत्ता नेशनल लॉ कॉलेज में अध्यापन कार्य करने लगे। इससे उनके दोनों काम हो रहे थे। जीवन यापन का साधन भी और युवाओं में स्वत्व एवं स्वाभिमान का जागरण भी। उन्होंने एक साधारण मकान में रहकर साधा जीवन जीने का निर्णय लिया। केवल धोती कुर्ता पहनते, स्वदेशी आँदोलन भी आरंभ किया। जन जाग्रति के लिये बंगला भाषा में पत्रिका 'वन्दे मातरम्' का प्रकाशन प्रारम्भ किया।

भारत की स्वतंत्रता के लिये बंगाल में दोनों प्रकार के प्रयास हो रहे थे। सामाजिक जागरण का भी और क्राँतिकारी आँदोलन का भी। तभी 1908 में अलीपुर बम विस्फोट हुआ। अंग्रेज सरकार को बहाना मिला और 37 बंगाली युवकों को आरोपी बनाया गया। इसमें अरविन्द घोष और उनके बड़े भाई बारिन घोष भी 2 मई 1908 को बंदी बनाये गये। सभी बंदी जेल भेज दिये गये। अलीपुर में अरविंद घोष और बारिन घोष के पिता कृष्णधन घोष का एक गार्डन हाउस था जो सशस्त्र क्रांति की योजना बनाने की गतिविधियों का केन्द्र बन गया था। वहाँ हथियार जमा किये जाते और बम भी बनाये जाते थे। लेकिन दिखावे के लिये भजन कीर्तन चलता था ताकि किसी को कोई संदेह न हो। बम बनाते समय एक दिन विस्फोट हो गया जिसमें एक युवक की मृत्यु हो गई। पुलिस ने पूरा इलाका घेरा और सभी संबंधित युवकों को राजद्रोह के आरोप में गिरफ्तार किया। इस काँड में अरविन्द जी को एक साल जेल की सजा हुई। वे 6 मई 1909 को

रिहा हुये। अलीपुर जेल जीवन का यह एक वर्ष उनके जीवन को बदल गया। वे स्वधीनता संघर्ष के राही तो रहे पर मार्ग पूरी तरह बदलकर। जेल की कोठरी में उनका समय अध्ययन और साधना में बीता था । पढ़ाई के दौरान लंदन की जीवन शैली और बाद में भारतीय जीवन दोनों तस्वीर उनके सामने थी। विशेषताएँ भी और वर्जनाएँ भी। कारण भी और विसंगति भी। उन्होंने कारणों के निवारण के लिये भारतीय समाज जीवन में आत्मिक शक्ति को जगाने का संकल्प किया। और इसके लिये आध्यात्म और शिक्षा का मार्ग चुना। इसकी झलक 30 मई 1909 को उत्तरपाड़ा की उस आमसभा में मिलती है जो रिहाई के बाद अरविन्द जी के सम्मान में आयोजित की गई थी। इस सभा में अरविन्द जी ने जेल के कुछ संस्मरण तो सुनाये पर उनका अधिकांश संबोधन आध्यात्मिक शक्ति को जगाकर संकल्पवान बनने का था ।

संघर्ष और दर्शन के लिये उन्हें भगवान श्रीकृष्ण का जीवन और गीता का संदेश अद्भुत लगा। उन्होंने यही मार्ग अपनाया। जेल से रिहा होने पर उनपर निगरानी थी। वे अपना वेष बदलकर गुप्त रूप से पांडिचेरी चले गए। पांडिचेरी अंग्रेजों के अधिकार में नहीं वहाँ फ्रांसीसी शासन था। पांडिचेरी जाकर अरविंद जी योग साधना केन्द्र आरंभ किया। और योग से आरोग्य एवं संकल्पशक्ति जागरण के वैज्ञानिक तर्क देकर युवा पीढ़ी को भी आकर्षित किया। इससे उनकी और उनके आश्रम की ख्याति बढ़ी। आगे चलकर उन्होंने वेद को भी जोड़ा और वेदों के वैज्ञानिक पक्ष को समाज के सामने प्रस्तुत किया। वेद से जुड़ते ही उनकी ख्याति महर्षि अरविंद के रूप में हुई। उनका उद्देश्य समाज जीवन में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की जाग्रति उत्पन्न कर एक स्वाभिमान सम्पन्न समाज का निर्माण करना था। और उन्होंने इसी उद्देश्य पूर्ति के लिये अपना जीवन समर्पित कर दिया।

महर्षि अरविंद एक महान योगी और दार्शनिक थे। उनके दर्शन का प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ा। भारतीयों के साथ विदेशी नागरिक भी उनके शिष्य बने और भारतीय संस्कृति से जुड़े। उन्होंने वेद उपनिषद और गीता पर टीका लिखी । भारतीय स्वतंत्रता, स्वाभिमान और आध्यात्मिक साधना का मंत्र देने वाले इस महान योगी ने 5 दिसंबर 1950 को अपने जीवन की अंतिम श्वाँस ली। 4 दिन तक उनके शिष्यों ने दर्शन के लिये उनकी देह रखी गई और 9 दिसंबर को उन्हें आश्रम में समाधि दी गई।

100/125, शिवाजी नगर, भोपाल



गंगाप्रसाद बरसैयां

रचना में युगानुरूप परिवर्तन अवश्यभावी है पं. रामकिंकर

(दिनांक 28–10–96 को संध्या 6.00 बजे युग तुलसी पंडित रामकिंकर जी उपाध्याय से छत्तरपुर में हुई चर्चा के कुछ अंश)

प्रश्न : आप विगत लगभग 50 वर्षों से तुलसीकृत रामचरित मानस एवं अन्य कृतियों को केन्द्र में रखकर युगानुकूल व्याख्यात्मक प्रवचन कर रहे हैं। इसके लिए अध्ययन-चिन्तन का अवसर आपको कब मिलता है और उसकी पद्धति क्या है ?

उत्तर : वस्तुतः सत्य तो यह है कि मैं कभी सोच समझकर योजनापरक चिन्तन, या तैयारी के साथ नहीं बोलता। व्यासपीठ पर बैठने के बाद जिस बिन्दु को उठाता हूँ उसमें सारे भाव अपने आप आ जाते हैं। संदर्भ स्वयं जुड़ते हैं। मुझे इसके लिए कभी प्रयास नहीं करना पड़ता। बल्कि जब कभी मैं तैयारी करके बोलने की चेष्टा करता हूँ तो मेरा व्याख्यान नीरस हो जाता है। मुझे संतोष नहीं होता और अनुभव यह भी होता है कि जो बोलना चाहता था, वह रह ही गया।

प्रश्न : आपको इतना सब स्मरण कैसे रहता है ? क्या इसके लिए कोई अभ्यास करते हैं ?

उत्तर : मैं याद रखने के लिए कोई अभ्यास नहीं करता। मैं इसे ईश्वरीय कृपा और चमत्कार ही मानता हूँ। उनकी प्रेरणा से ही सारे तथ्य और संदर्भ मन–मानस में आकर वाणी से अभिव्यक्त होते हैं। इस रहस्य के बारे में मैं स्वयं कुछ नहीं कह सकता। आज तक मैं इसका कारण स्थूल रूप में कभी समझ नहीं पाया। लोग इस पर विश्वास करें अथवा नहीं, मुझे खुद ही आश्चर्य होता है कि यह सब कैसे हो जाता है। कभी –कभी तो लगता है कि मैं नहीं कोई और बोल रहा है। याद होने का एक कारण यह भी हो सकता है कि विगत 50 वर्षों से बोलते–बोलते बहुत कुछ मुखाग्र हो गया।

अभ्यस्त हो गया।

प्रश्न : आरंभ में तो आपने अभ्यास किया ही होगा?

उत्तर : सच तो यह है कि प्रारंभ में प्रवचन में मेरी कोई अभिरुचि नहीं थी। मैं प्रवचनकार बनना ही नहीं चाहता था। मेरे पिता जी अच्छे ज्ञाता और प्रवचनकार थे। मैं उनके प्रवचन सुनता था और सुनते–सुनते सो जाता था। पिता जी नाराज भी होते थे। परन्तु मेरा मन परिवर्तित नहीं होता था।

प्रश्न : तब फिर आपको तुलसीदास जी की तरह कोई नरहरि गुरु प्राप्त हुए होगें ?

उत्तर : जी हाँ, यह सच है। वैसे गुरु तो नहीं, पर वृन्दावन में तीन महान संतो के सान्निध्य में रहने का सुयोग मिला। मैं 20 वर्ष की अवस्था में तीन माह के लिए वृन्दावन गया था और ग्यारह माह रहा। रोज प्रवचन होते थे। प्रवचन मुख्यतः श्रीमद्भागवत गीता अथवा भगवान कृष्ण से संबंधित रहते थे। साधुओं की पर्याप्त संख्या रहती थी। वहाँ भी परस्पर चर्चा और विमर्श होता था। मुझे भी बोलने के लिए कहा जाता। धीरे –धीरे मैं भी बोलने लगा। कैसे बोलने लगा, यह बता पाना कठिन है। मैं उन तीनों महान संतों की कृपा मानता हूँ। एक और संत महाराज अखंडानन्द जी के दर्शन मुझे जबलपुर में हुए। उनका भी आशीर्वाद मिला और अतंतः मैं प्रवचनकार बन गया। जो प्रभु की प्रेरणा होती है वही बोलता हूँ।

प्रश्न : आपके प्रवचन प्राचीन ग्रंथों पर आधारित होकर भी युगीन संदर्भों के अनुकूल होते हैं। कृपया बतायें कि सीता जी का पृथ्वी से प्रगट होना, राम-लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का पुत्रेष्टि यज्ञ से उत्पन्न होना, सीता जी की अग्नि-परीक्षा करना, सीता जी को निर्वासित करना कहाँ तक प्रमाणिक और औचित्यपूर्ण माना जा सकता है? आज की बुद्धिवादी पीढ़ी प्रायः प्रश्न करती है।

उत्तर : यदि तर्क के लिए तर्क किये जायें तब न तो कोई समाधान हो सकता है और न निष्कर्ष पाया जा सकता है। रामकथा के संबंध में तीन दृष्टियां है–पहली अनादित्व की, दूसरी अलौकिकत्व की और तीसरी भौतिक। अनादित्व का आशय है कि ये सभी पात्र अनादि शक्तियाँ है। अनादिकाल से रही है। सृष्टि के उद्भव के साथ ही इनका भी उद्भव हुआ और रचनाकारों ने अपने ढंग से उल्लेख किया। अलौकिकत्व से तात्पर्य है कि सामान्य में असामान्यत्व अथवा अलौकिक तत्वों–शक्तियों का आरोपण कर जनकल्याण और जनरंजनार्थ लीला करवाई गई। वहां लीलाभाव प्रमुख हैं और उसी दृष्टि से कल्पना और सर्जना की गई। इन दोनों का आधार आस्था और विश्वास है। तर्क के लिए वहाँ उतना स्थान नहीं है। तीसरी दृष्टि भौतिक है जो बुद्धि और विज्ञान प्रधान है और हर वस्तु तथ्यों का वैज्ञानिक परीक्षण कर सत्य को स्वीकार करती है। उनका समाधान पूर्ववर्ती दोनों दृष्टियों से नहीं किया जा सकता। नई पीढ़ी सीता को पृथ्वी से उत्पन्न होना तथा दशरथ पुत्रों का यज्ञ से जन्म लेना स्वीकार नहीं कर सकती क्योंकि यह विज्ञान सम्मत नहीं है। वह सीता की अग्नि–परीक्षा और सीता–परित्याग को उचित नहीं मानती। मैं उनके इस सोच को गलत अथवा अस्वाभाविक नहीं मानता। हर वस्तु के अनेक पहलू होते हैं। हर एक का सोच और दृष्टिकोण भी अलग होता है। हर एक के अपने तर्क होते हैं। एक बात का ध्यान अवश्य रखना होगा कि राम एक व्यक्ति नहीं बल्कि राजा थे। राजा सारी प्रजा का प्रतिनिधि होता है। उसका कर्तव्य है कि प्रजा में व्याप्त किसी भी

सन्देह को दूर करें यदि वह ऐसा नहीं करता तो अनेक आरोपों का शिकार बनता है जिसका दुष्प्रभाव समाज तथा राज्यव्यवस्था पर भी पड़ता है। सीता रावण जैसे राक्षस राजा द्वारा अपहृत कर लंका में रखी गई है। हो सकता है इससे जनता में कानाफूसी और सन्देह उत्पन्न हुआ हो। अतः उनके निराकरण के लिए राम को यह कठोर कदम जनता के व्यापक हित में उठाने पडे हों। क्योंकि यदि राजा पाक–साफ होगा तो प्रजा भी वैसी होगी।

प्रश्न : पर क्या इन तर्कों से नई बुद्धिवादी पीढ़ी को संतुष्ट किया जा सकता है ? इधर नए युग में सीता संबंधी जो कृतियाँ आई हैं वहां भी सीता को अत्यन्त प्रखर–मुखर रूप में प्रस्तुत कर राम पर अनेक आरोप और प्रश्न–चिन्ह लगवाये गए हैं। वे सभी सीता के पक्षधर प्रतीत होते हैं कक्षाओं में विद्यार्थी भी अनेक प्रश्न करते हैं।

उत्तर : आपका कथन सत्य है। मैं उससे असहमत नहीं हूँ। तुलसीदास जी की कृतियों पर शोध करने वाले, उनका अध्ययन और विवेचन करने वाले नए युग और नए सोच के विद्वान और विद्यार्थी हैं। वे आस्था की बजाय सत्य की कसौटी को प्रमुखता देते हैं। उन्हें इसके लिए दोष नहीं दिया जा सकता। मैं इतना अवश्य कहूंगा कि हर युग का अपना वातावरण और परिस्थितियाँ एवं आवश्यकता में होती हैं। रचनाकार उन्हें ध्यान में रखते हुए मानवीय कल्याण और समाज –हितार्थ रचना करते हैं। उस युग में इसकी आवश्यकता थी अतः उन्होंने वैसी रचनायें प्रस्तुत की थी। इस युग में होते तो संभव है कि रचना का स्वरूप वैसा न होता। नये युग के अनुरूप परिवर्तन होता। जैसा मैंने पूर्व में कहा कि हर व्यक्ति को अपने ढंग से सोचने–समझने का अधिकार है। जो जैसा ठीक समझे उसे वैसा स्वीकार कर सकता है। पर अनादित्व, अलौकिकत्व और भौतिकता को ध्यान में रखना भी जरूरी है।

एचआईजी 124, भरतहु नगर, सतना मो. 9425376413



भारत की उन्नति के लिए कृषि विद्या

भारत की उन्नति के लिए इस बात की आवश्यकता नहीं कि भारत के लोग विदेशों में जाकर बैरिस्टर बनकर आएँ। अपितु आवश्यकता इस बात की है कि लोग कृषि विद्या की शिक्षा प्राप्त करके आएँ और संभव हो तो कोई उद्योग सीख कर आएँ। जिससे अपने देश का लाभ हो अपने देश का धन अपने देश में ही रहे। दूसरे देशों का भी धन इस देश में आए दूसरे देशों का भी धन इस देश में तभी आ सकेगा जब यहां कृषि विद्या की उन्नति होगी अन्य उद्योग धंधों में भारत अन्य देशों का मुकाबला नहीं कर सकता क्योंकि दूसरे देशों के लोग इन बातों में बहुत आगे बढ़ गए हैं।

युग तुलसी का शताब्दी वर्ष - राम गुन गाऊँ

डॉ. गंगाप्रसाद बरसैयां

इस बहुवर्णी मायामयी संसार में जो भी मनुष्य जन्म लेता है उसे जीवन में अनेक अनुकूल–प्रतिकूल, सुखद–दुखद परिस्थितियों से होकर गुजरना पड़ता है। व्यक्ति जीवन और जगत को स्वंय भोगता एवं खुली आँखों से देखता है। धीरे–धीरे वह अनुभूतियों का पुंज बन जाता है। जो व्यक्ति जितना संवेदनशील होगा उसका संगसार उतना ही बड़ा और व्यापक होगा। उसकी अनुभूतियाँ उतनी ही सम्पन्न होंगी। संवेदनशील अनुभवप्रवण प्राणी अपनी अनुभूतियों–प्रतिकियाओं को किसी न किसी रूप में व्यक्त अवश्य करता है। शिक्षक, व्याख्याकार और लेखक प्रायः कवि होते हैं। अपनी संवेदना के आवेग में उनकी भावनायें प्रायः काव्यरूप में व्यक्त होती हैं। पंडित रामकिंकर जी का जीवन एक भक्त, संत, व्याख्याकार तथा जनहिकारी चिन्तक का रहा है जो तुलसीकृत ग्रंथों को माध्यम बनाकर सदैव रामकथा का आख्यान जनमानस के बीच करते रहे हैं। उन्होंने अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया किन्तु कभी कोई काव्यकृति देखने में नहीं आई। ऐसे में कई बार जिज्ञासा होती थी कि जिसके भीतर अपने आराध्य राम–जानकी एवं हनुमान के प्रति इतनी गहन आस्था और समर्पित निष्ठा हो, जो जनता के दुःख–सुखों के बीच रहकर जनमानस कों संस्कारित करने के लिए रामकथा का उद्‌बोधन देता रहा हो, जिसके भीतर देश और समाज तथा जन सामान्य के लिए इतनी संदेवदनशील हो, वह कवि न हो–ऐसा असंभव सा लगता है। कोई भी व्यक्ति अपने एकांत क्षणों में मनन–चिन्तन करते हुए प्रायः गुनगुनाता है। जो दिन–रात राम के गुण गाता हो वह एकांत में गुनगुनाये बिना भला कैसे रहा सकता है। जब सारी दुनिया से अलग होकर व्यक्ति अपने आप मात्र होता है तभी वह

सच्ची आत्माभिव्यक्ति करता है। यही अभिव्यक्ति आत्मा का गान है। यह गान महाराज श्री के भीतर भी था जो समय–समय पर फूटता रहा और 'राम गुन गाऊँ' शीर्षक से संकलित–प्रकाशित होकर सभी के सामने आया।

'राम गुन गाऊँ' की कविताओं पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो लगता है कि वह उनकी भक्तिभावना का प्रगटीकरण हैं। जिस प्रकार तुलसीदास ने विनय पत्रिका लिखी उसी प्रकार महाराज श्री की ये भक्तिपरक रचनायें हैं। इनमें उन्होंने अपने आराध्यों के कृपाभाव, औदार्य, वात्सल्य आदि का गुणगान करते हुए उन्हें जगकर्ता, पालनकर्ता आदि बताते हुए अपनी दुर्बलताओं, दुविधाओं, दुर्गुणों आदि की भी चर्चा की है और प्रभु से कृपा की याचना की है। इसी के साथ सांसारिक स्थितियों विकृतियों, दुखों–कठिनाइयों का भी दिग्दर्शन कराया है। अपने दुख–सुखों आकांक्षाओं की चर्चा करते हुए कई बार लगता है जैसे के आराध्य से बतिया रहे हों। उनसे एकाकार हो जाना चाहते हो।

महाराज श्री ने अपने कथन में अपने को अकवि कहा है और बताया है कि ये कवि की नहीं, अकवि की कवितायें हैं। साथ ही यह भी स्वीकार किया है कि जब भी उनके भीतर कोई भाव जाग्रत हुआ तो उसकी अभिव्यक्ति इन कविताओं में हुई। तुलसीदास ने भी अपने को कवि नहीं माना था–

कवि न होउँ नहिं चतुर कहाऊँ।
कवित विवेक एक नहिं मोरे।

यही भाव महाराजश्री भी व्यक्त कर रहे हैं। तुलसीदास का उद्देश्य 'सुर सरि सम सब कर हित होई' था और रामकिंकर जी ने भी जीवन भर सर्वजनहितकारी 'रामकथा सुरसरि' की अमृत धारा का जन–जन को पान कराया।

इन कविताओं में आराध्य की महिमा गायन के साथ कहीं आत्मपीड़ा और आत्मनिवेदन है तो कहीं 'मैं तुम' की शैली का प्रयोग। कहीं संसार में व्याप्त फूल–काँटों की चर्चा है तो कहीं अन्तरात्मा में व्याप्त द्वन्द्वों की वेदना सोचता हूँ लौट जाऊँ फिर न क्यों, चिर पिपासा ही कहे आराध्य मेरी।

इस तरफ उन्मुक्त मन का है निमंत्रण, ''भूमि की ममता उधर व्याकुल बनाती।''
मन भटका हुआ है, लिखता हूँ

पृ. 22

जैसे कोई बालक घरौंदों को बनाता मिटाता हो।

पृ. 56

यों तो वे प्रभु के सभी रूपों को मानते हैं, पर उनकी आस्था सगुण रूप में ही है– 'सगुण में डूबो–अगुण को यों उठाते।' तुलसी की 'अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदाः की बात कहते हैं। प्रभु के निकट रहने वाले जागतिक सुख–दुख में न उलझाकर उसे ईश कृपा से जोड़ते हैं। भक्त तो ईश्वर से जुड़ाव को सबसे बड़ा सुख मानता हैं। चूँकि दुख प्रभु का स्मरण कराता है –दुख में सुमिरन सब करैं–इसलिए वह दुख को अपना प्रिय मानता है। रामकिंकर जी भी दुख को प्रभु की स्नेह –छाया मानते हैं और सुख को क्षण भंगुर कहते हैं –

सुख-तेरी माया क्षण भंगुर,
दुख तेरे स्नेह की छाया
दुख संदेश मिलन का मधुमय,

सदा अश्रु में तुमको पाया।।

पृ0 61

कोई भी कष्ट–कंटकों और प्रतिकूलताओं में रहना या चलना नहीं चाहता किन्तु मायामयी संसार में इससे बच पाना भी कठिन है। बचाव है तो मां किशोरी जी के पास जो अपने वात्सल्य से ताप को शांत करती है–

नही चाहता हूँ जिन पथरीली राहों पर चलना,
बरबस आँसू लिए वहीं चलना पड़ता है।
थका हुआ सा रहा, इसे दे कौन सहारा,
मातु किशोरी ही निज कर से दुलराती है।

पृ. 51

भक्त रामकिंकर जी का अटल विश्वास है कि संसार से भटकन की मुक्ति केवल प्रभु के चरणों में ही है। जब तक मैं–तुम का भेद समाप्त नहीं होता, प्रभु से एकत्व संभव नहीं। प्राण–पपीहां पीउ–पीउ की पुकार करता रहता है। इसीलिए वे प्रार्थना करते हैं–

भेद मतें भटकूँ नहीं,
बस एक स्वर का ज्ञान दो प्रिय,
बाँध लूँ उस प्राण को,
बस एक ही तुम दान दो प्रिय।

पृ.63

स्वागत करो स्वागत अपना ही,
यह मैं-तुम का भेद मिटाओ।
मैं न समेट सका अपने को,
तुम्हीं सिमट मुझ में मिल जाओ।

जब तक यह नहीं होगा लुका–छिपी का भाव और दूरी बनी रहेगी–'हिय में बिहँसते हो हाथ नहीं आते हो।' प्रभु की निकटता का मूल मंत्र है अहं का विसर्जन। अहं के रहते प्रभु कहाँ ? कबीर ने यही बात कही थी–'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नांहि।' यहाँ तो शीश उतार कर आना होगा –'शीश उतारै भुंई धरै तब बैठे घर माँहि।' माया और प्रभु दोनों एक साथ संभव नहीं। अन्य भक्तों की तरह रामकिंकर जी में भी गहरी पीड़ा है कि यह मेरा 'मैं' पीछा नहीं छोड़ता। वे इस मैं से मुक्ति के लिए अपने प्रभु से विनती करते हैं–

लो छीन आज मेरे मैं को हे शक्तिमान,
इस 'मैं' के सूने आँगन पर तुम आ बैठो
इस मैं को प्रियवर अब न बहुत दो प्राणदान।

पृ. 37

तेरा हूँ केवल तेरा हूँ
बस यही भावना रहने दो,
तेरी करुणा की सरिता में
बह जाय व्यर्थ यह स्वाभिमान।

पृ. 23

दुर्बलतायें सभी में होती हैं। रामकिंकर जी इसे स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि प्रभु कृपा के प्रभाव से ही काम और दाम से मुक्ति मिल पाती है। राम की कृपा ने ही उन्हें सच्चा रामकिंकर बनाया। कभी वे अपनी मोहग्रस्तता की बात करते हैं, कभी असमर्थता से व्यथित होते हैं और कभी पापाचार का प्रतिकार न कर पाने की वेदना व्यक्त करते है। इसी व्यथित मनोदशा में वे हनुमान को पुकारते हैं–

'कैसे बताऊँ कपिराज क्या दशा है मेरी, कामदास होके रामदास कहलाता हैं।' वे ज्ञान–वैराग्य की बजाय प्रेम की याचना करते हैं–

पर तुमसे मांग रहा हूँ अब झोली पसार।
वैराग्य ज्ञान अब नहीं, चाहिए मुझे प्यार। पृ. 23

वे तृप्ति के साथ अतृप्ति की बात करते हैं और अतृप्ति को श्रेष्ठ इसलिए मानते हैं क्योंकि वह ईश्वर की ओर अग्रसर करती है। उनकी दृष्टि में अतृप्ति सुहागिन है कभी मिटती नहीं। तृप्ति सुख की संगिनी है और अतृप्ति दुख की। दुखी व्यक्ति सुख का और अतृप्त आत्मा तृप्ति का सच्चा आनंद ले सकते हैं। रामकिंकर जी की दृष्टि में जो ईश्वर की ओर अग्रसर करे वही वरेण्य और सुखद है–

तृप्ति तो गति छीन लेती,
अतृप्ति ने आगे बढ़ाया।

पृ. 26

चिर अतृप्ति की राधा प्रियवर
तेरा पंथ निहार रही है।

पृ. 27

तुलसी ने इसी अतृप्ति के लिए अपने को चातक बनाया। महाराज श्री ने 'अतृप्ति की राधा' के रूप का अच्छा प्रयोग किया है। अनन्यता की आकांक्षा अतृप्ति की मनः स्थिति से प्राण –रस पाती। अनन्यता और एकत्व उनकी सर्वोच्च आकांक्षा है। वे मानते है कि सम्पूर्ण सृष्टि के कर्ता–धर्ता प्रभु राम हैं। सृष्टि उनकी नाट्यशाला है। तमाम प्राणी उनकी नाट्यलीला के पात्र हैं। वे जैसा चाहें वैसा नचाते हैं। युग तुलसी होने को भी वे नाट्यलीला ही मानते हैं। जबलपुर के शहीदी–स्मारक भवन के परिक्रामी रंगमंच के उद्घाटन अवसर पर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जबलपुर आये थे। उस अवसर पर उन्होंने इसी भाव की रचना पढ़ी थी जिसकी दो पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार की थीं।–

तुम निरखो हम नाट्य करें।
राम तुम्हारी इस नगरी में कहो कौन सा रूप धरें।

तुलसीदास ने भी लिखा था–

उमा दारु जोषित की नाई।
सबहिं नचावत राम गोसाई।

रामकिंकर जी बड़ी विनम्रता से कहते हैं–

हूँ तुम्हारे नाट्य का बस एक अभिनेता,
तु सिखाता जो वही व्यवहार करता हूँ।
युग युगों से चल रहा हूँ एक इंगित पर,
नाट्यशाला से तुम्हारी प्यार करता हूँ।

पृ. 60

'फिर तुम्हारी याद आई' जैसी कुछ रचनायें ऐसी हैं जो द्विअर्थक कही जा सकती हैं जिनका अर्थ लौकिक–अलौकिक दोनों लिया जा सकता है। व्यक्ति का अतीत अंत तक पीछा नहीं छोड़ता। बीच–बीच में वह झाँकने और अध्यात्म के मार्ग में बाधा डालने की चेष्टा से बाज नहीं आता। ऐसी पंक्तियां उनके अतीत की ओर इंगित करती प्रतीत होती हैं–

फिर तुम्हारी याद आई।
रजनीगंधा सुरभि सरीखी लो
फिर याद तुम्हारी आई।

ऐसी पंक्तियाँ अत्यन्त नगण्य हैं। उन्हें अयोध्या और चित्रकूट अत्यन्त प्रिय थे। अतः अपनी कविताओं में वे इनका बखान करना नहीं भूलते। जहाँ प्रभु राम–सीय निवास करते हैं उनका स्मरण किसी भी भाव के लिए स्वाभाविक है– किन्तु गिरि कानन की महिमा बखाने कौन,

सीयराम प्रभुदित सुखेन जहाँ सोते हैं। किंकर कृपा की कोर पाकर सनाथ हुआ, प्रेम की पयस्विनी में लगाते नित गाते हैं। पृ. 4

भक्तिपरक रचनाओं के साथ ही उन्होंने मानवता के भावों की उपेक्षा नहीं की। मानव–कल्याण और प्रेमभावना को सर्वत्र वरीयता दी। जहाँ व्यक्ति समष्टि में परिवर्तित हो वही श्रेयष्कर है–

हे क्रांति दूत तुम क्रांति लेकिन मुझ को,
इस भू-मंडल पर प्रेम गीत ही गाने दो।
तुम सिहनाद से करो निनादित भूमंडल,
पर मुझे बँसुरिया ही बस आज बजाने दो।

पृ. 78

क्योंकि 'मानव को शोषण दुःख से मुक्त बनाना है।' लोगों को उनका उपर्यक्त कथन समय विरुद्ध बेसुरा लग सकता है, पर वे कहते हैं–

संभव है तुम्हे लगे कुछ ऐसा ही,
यह काल विरुद्ध बेसुरा मेरा गाना है।
पर कभी सोचना शांत हृदय से ये बातें,
क्या नहीं दंभ से भी स्वंय को छलती हैं।

पृ. 74

और अन्ततः वे घोषणा करते हैं लो मैं सब यहीं छोड़कर जा रहा हूँ जहाँ पूर्ण शांति है–इसमें उनका कृतज्ञ भाव भी निहित है–

लो मैं चला छोड़ यह गृह भी,
यह तो था बस रैन बसेरा।
नहीं आज तक जान सका हूँ,
मीत कौन सा घर है मेरा।
सबने दिया, दे सके जितना,
मैं कृतज्ञ सबका हूँ साथी
पर सच कहूँ सदा प्यास बाकी है,
इससे मैं रुक सका न साथी।
सभी तृषातुर भटक रहे हैं,
युग-युग से चल रही कहानी।
मिटा सके जो चिर अतृप्ति को
ऐसा उसे चाहिये पानी।
गृह अनेक अपने बन-बन कर,
मुझसे यहीं बिछड़ जायेंगे।
किन्तु एक दिन होगा ऐसा,
प्रिय गृह अपना मिल जायेगा।

पृ. 90–91

उन्हें विश्वास था कि तमाम भटकावों के बाद उन्हें परमशांति का वह स्थल मिल जायेगा जिसके वे आकांक्षी हैं। अन्ततः वे उस स्थान को पा गए जिसे प्रभु का परमधाम कहा जाता है और वे वहीं से हम सभी को अपने आशीष से अभिप्रेरित और निर्देशित कर रहे हैं।

एचआईजी 124, भरतहु नगर, सतना मो. 9425376413

पत्रांश

संपादक महोदय,

तुलसी मानस भारती के दिसम्बर 2024 अंक में प्रकाशित सभी आलेख महत्वपूर्ण मननीय एवं ज्ञानवर्धक हैं। संपादकीय में भगवान परशुराम के व्यक्तित्व को लेकर वाल्मिकी रामायण, आध्यात्म रामायण और भवभूति के महाविर्चित में उल्लेखित तथ्यों की चर्चा करते हुए उनके संहारक और संरक्षक दोनों पक्षों को स्पष्ट किया गया है। सामान्यतः लोग उनके क्रोध और उग्र रूप को प्रमुखतः कहते सुनते हैं। आवश्यक है कि उनके चरित्र के रचनात्मक पक्ष को भी उजागर किया जाये। जिसके प्रमाण पुराने ग्रंथों में अंकित हैं।

श्री रमेश शर्मा का यह निष्कर्ष हम सभी ऋषियों की संतान हैं और मूलतः जनजातियों में से हैं उनका यह लेख गहन शोध की ओर इंगित करता है। डॉ. विश्वास पाटिल ने वाल्मीकि, कालीदास, भवभूति की रचना भूमि के मूल में राम के स्वरूप की जैसी स्थापना है उसकी संदर्भ सहित जानकारी दी है। श्री पुरुषोत्तम श्रीवास्तव का लेख वेद सम्मत है।

संपादक देवेन्द्र कुमार रावत ने वाल्मिकि के माध्यम से आज समाज में व्याप्त लोभ और लाभ की घातक प्रवृत्ति की चर्चा की है जिससे जन–जन दुःखी है। कुल मिलाकर इस अंक का शब्द–शब्द पठनीय और चिंतनीय है। अंक संग्रहणीय है।

गंगाप्रसाद बरसैयां
एचआईजी 124, भरतहु नगर, सतना, म.प्र.

संतोष की बात

यहां संतोष की बात है कि बावजूद ऊपरी उत्साह भंग और घोर किंतु निर्जीव विरोध के दृढ़ता और निश्चित से, हिंदू लोग उचित शिक्षा प्राप्त करने लगे हैं, आवश्यक स्थिति पालकता उनमें आती जा रही है बीते युगों के सामाजिक नियम बंधन कम कठोर होते जा रहे हैं, जातिप्रथा अपनी प्राकृतिक संतुलितता को प्राप्त कर रही है। हिंदू लोग पश्चिमी विज्ञान से दूर भगाने की अपेक्षा आज उसका स्वागत कर रहे हैं और वह उसे अपनी ब्रह्मविद्या (वैदिक ज्ञान) का सर्वोत्तम सहायक मानने लगे हैं।

पं.गोरेलाल शुक्ल स्मृति समारोह

प्रवचनकर्ता : परमपूज्य पं.उमाशंकर व्यास

दिनांक 2/12/2024 से 6/12/2024

तुलसी मानस प्रतितष्ठान के प्रतिष्ठा पुरुष पं. गोरेलाल शुक्ल स्मृति समारोह के अंतर्गत पं. रामकिंकर सभागार में प्रथम दिवस संध्या पर परमपूज्य महाराजश्री पं.उमाशंकर व्यास अपने प्रवचन प्रसंग श्रीराम विवाह के संदर्भ में कहा कि भगवान श्रीराम ज्ञान स्वरूप हैं। सीताजी भक्ति देवी हैं। इन दोनों का मिलन ही रामविवाह है। आपने कहा कि हमारे जीवन में भी ज्ञान और भक्ति का समन्वय होना बहुत आवश्यक है। ज्ञान भक्ति के समन्वय से हमें बोध होता है कि हम क्या करें और न क्या करें ? हमारे धर्मशास्त्रों में इसलिए ही श्रद्धा और भक्ति बढ़ाओं की बात कही गयी जो संतो की कृपा से प्राप्त होती है।

द्वितीय दिवस पर परमपूज्य महाराजश्री ने प्रवचन प्रसंग के अंतर्गत कहा कि आनन्द हमारे भीतर होता है और सुख बाहर से प्राप्त होता है। आपने कहा कि आनंद और सुख एक साथ मिलना कठिन है। क्योंकि सुख का विरोधी दुःख है लेकिन आनंद का कोई विरोधी शब्द नहीं है। सुख प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आता है और चला जाता है तब व्यक्ति दुःखी होता है पर आनन्द की प्राप्ति एक बार हो जाने पर व्यक्ति कभी दुःखी नहीं हो सकता इसलिए संत इसी परमानंद की खोज में रहते हैं यह बाहर से प्राप्ति का साधन नहीं है। संत हमें भगवंत से जोड़ते हैं जहां ईश्वर के दर्शन से आनंद और सुख दोनों की प्राप्ति एक साथ होती है। इसी संदर्भ में आपने कहा कि मानस में भगवान श्रीराम के स्वभाव एवं प्रभाव के बारे में वर्णन आया है कि जो आनंद सिंधु सुख रासी सीकर ते त्रैलोक सुपासी अर्थात् भगवान श्रीराम ही आनंद के सिंधु हैं और सुख की राशि भी है। आपने महाराज दशरथ प्रसंग का उल्लेख करते हुए कहा कि उन्हें भी वृद्धवस्था में सभी सुख होते हुए एक दुःख था कि उनके कोई संतान नहीं है। उन्होंने गुरु वशिष्ठ से अपनी व्यथा बताई और वशिष्ठजी ने उन्हें ईश्वर को पुत्र रूप में प्राप्ति का मार्ग सुझाया। उनके जीवन में श्रीराम के सहित तीनों भाईयों का जन्म आनंद और सुख दोनों का कारण बन गया। श्रीराम विवाह में तो ऐसे ही परमानंद की प्राप्ति के संबंध में गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं "जनुजीव उर चारिउ अवस्था विभुन सहित बिराजहीं" अर्थात् जीव के हृदय में चारों अवस्थायें जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय और चारों स्वामियों (विश्व, तैजस, प्राज्ञ और ब्रह्म) सहित विराजमान हो गईं हों।

आपने कहा कि श्रीराम विवाह के पूर्व मानस में पुष्पवाटिका प्रसंग का विशेष उल्लेख गोस्वामी जी ने किया है। यहां पार्वती के रूप में श्रद्धा एवं भक्ति के रूप में सीताजी का मिलन है। हमारे आपके जीवन में भी श्रद्धा और भक्ति का समन्वय होने से ही ईश्वर का साक्षात्कार होता है। जैसे पुष्पवाटिका में सीता जी को भगवान श्रीराम के और भगवान श्रीराम को सीता जी के दर्शन हुए।

तृतीय दिवस पर परमपूज्य महाराजश्री ने प्रवचन प्रसंग के अंतर्गत कहा कि श्रीराम विवाह में भगवान श्रीराम वर के रूप में अश्व पर सवार होने का वर्णन आया है कि यह अश्व बहुत चंचल है इसका आध्यात्मिक अर्थ है कि यह अश्व काम है जो हमारे मन पर प्रभाव डालता है। श्रीराम विवाह में इसी काम रूपी अश्व पर श्रीराम दूल्हें के रूप में बैठे हैं और इस अश्व की लगाम प्रभु के हाथ में है। जिसके कारण यह काम रूपी अश्व की चंचलता तो बनी हुई है लेकिन नियंत्रण में भी है। अर्थात् मन की चंचलता राम प्रेम से ही संयमित हो सकती है। रामचरित मानस में इसलिए ही बाल कांड में दो विवाहों का वर्णन आया है। पहला विवाह भगवान शिव का है जो वृषभ पर बैठकर बारात में जाते हैं यहां वृषभ धर्म का प्रतीक है। अतः सनातन संस्कृति में धर्म के माध्यम से काम पर नियंत्रण कैसे करें। विवाह के माध्यम से यह बताया गया है। अश्व के नाचने का आध्यात्मिक अर्थ बताते हुए आपने कहा कि ये माया हम सबके मन को बहुत नचाती है पर मायापति की शरण में जाने से माया का प्रभाव हम पर नहीं पड़ता है। हमारी संस्कृति में विवाह का विशेष महत्व है किन्तु धर्म के साथ काम के संयमित उपयोग की अनुमति हमारे ऋषियों ने दी है ताकि संसार में सृष्टि का सुचारू संचालन होने के साथ–साथ मानव जीवन की सार्थकता भी प्राप्त हो सके।

चतुर्थ दिवस पर परमपूज्य महाराजश्री ने प्रवचन प्रसंग के अंतर्गत कहा कि श्रीरामविवाह में द्वाराचार के समय श्रीराम के वर रूप में दर्शन कर सुनयना जी को हृदय में अपार प्रसन्नता का अनुभव होता है। इस प्रसंग की आध्यात्मिक व्याख्या करते हुए महाराजश्री ने कहा कि सुनयना जी जो सीता जी की मां है विदेह नगर में रहते हुए अपने नेत्रों का सही लाभ नहीं ले पा रही थी क्योंकि मिथला तो विदेह नगरी है जहां वेदांत के सिद्धांत के अनुसार ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है। पर सांसारिक रूप से नेत्रों की सार्थकता तो रूप दर्शन में है और वेदांत में रूप को मिथ्या माना गया है किन्तु आज सुनयना जी को जगत में ही ब्रह्म श्रीराम के दर्शन कर उन्हें अपने नेत्रों का सही फल मिला। गोस्वामी तुलसीदास जी भी मानस में यही कहते हैं त्रेता युग में संपन्न श्रीराम विवाह का भक्तों के लिये यही महत्व है कि हम आज भी अपने हृदय में ब्रह्म के रूप में श्रीराम और शक्ति के रूप में सीता जी के दर्शन करें। इसी संदर्भ में गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है कि जनकपुर में श्रीराम के विवाह में सब कुछ होते हुए भी एक कमी थी वह कमी यह है कि उस समय मैं नहीं था इसलिये वे लिखते हैं कि प्रभु हमारे मन मंदिर में भी आप सीताजी सहित विराजमान हों।

समापन दिवस पर परमपूज्य महाराजश्री ने बालकांड के समापन पर श्रीराम विवाह की फलश्रुति की इस आध्यात्मिक व्याख्या करते हुए कहा कि आज भी जो लोग भगवान श्रीराम के

मंगल विवाह को श्रद्धा सहित प्रेम पूर्वक गायेंगे उनके जीवन में सदा उत्साह और मंगल बना रहेगा।

आपने विवाह पंचमी के इस शुभ अवसर पर सभी को मंगल आशीर्वाद देते हुए कामना की आज भी अपने हृदय में आनंद के धाम श्रीराम और जानकी जी को विराजमान करें तो हमारे जीवन में सदा आनंद बना रहेगा ।

पंच दिवसीय समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में मा.श्रीमती कृष्णा गौर मंत्री अल्प संख्यक कल्याण विभाग, मा. श्री जगदीश देवड़ा उपमुख्यमंत्री म.प्र., मा. श्री प्रहलाद पटेल, ग्रामीण विकास मंत्री, मा. श्री माधवसिंह दांगी पूर्व अध्यक्ष पाठ्यपुस्तक निगम, मा. श्री भवानीशंकर शर्मा पूर्व जिला पंचायत अध्यक्ष नर्मदापुरम, मा. श्री सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय निदेशक केन्द्रीय स्कूल शिक्षा संगठन भारत सरकार, कार्याध्यक्ष श्री रघुनंदन शर्मा, संयोजक श्री राजेन्द्र शर्मा, सचिव श्री कैलाश जोशी, कोषाध्यक्ष श्री विजय अग्रवाल, प्र. संपादक श्री पी.डी. मिश्र, श्री बी.के. सांघी, श्रीमती उषा जायसवाल, श्रीमती जानकी शुक्ला, श्रीमती सुशीला शुक्ला, श्रीमती कृष्णा श्रीवास्तव, श्रीमती शोभना तिवारी, श्री अरूण गुप्ता, स्व. श्री गोरेलाल शुक्ल के पुत्र श्री कमल नारायण शुक्ल एवं प्रबंधकारिणी की सदस्य व अन्य श्रद्धालु भी उपस्थित हुए।

समारोह में स्व.लक्ष्मीनारायण गुप्त पुरस्कार श्री नीतेश व्यास, न्यायमर्ति आर.डी.शुक्ल स्मृति पुरस्कार कु. दिशा दिलीप जोध, भाई रतनकुमार पत्रकारिता पुरस्कार कु. अंशिका कसाना को प्रदान किया गया ।

भारतीय ज्ञान परंपरा : विविध आयाम का लोकार्पण

भारतीय शिक्षा पद्धति के वर्तमान में लोकांतरण और देशांतरीय अन्वीक्षण की श्रंखला में आचार्य प्रभुदयाल मिश्र, प्र. संपादक तुलसी मानस भारती द्वारा लिखित तथा संस्कृति विभाग मध्य प्रदेश शासन के प्रतिष्ठान विक्रमादित्य शोधपीठ द्वारा प्रकाशित पुस्तक का लोकार्पण मुख्य मंत्री डा मोहन यादव ने 11 अक्टूबर 2024 को उज्जैन में संपादित किया। कालिदास अकादमी उज्जैन के विशाल सभा पान्डाल में सम्पन्न अन्तराष्ट्रीय गीता महोत्सव के भव्य आयोजन में देश और विदेश की अनेक सांस्कृतिक संस्था प्रमुख तथा अध्यात्मविद् और मनीषी गण उपस्थित थे।

लेखक ने अपनी कृति के 'प्रत्यभिज्ञान' में ज्ञान तीर्थ सप्रे संग्रहालय श्री विजयदत्त श्रीधर की प्रेरणा को स्मरण करते हुए लिखा, 'इस रचना–धारा के उत्प्रेरक और परिपोषक ज्ञान तीर्थ सप्रे संग्रहालय भोपाल के संस्थापक श्री विजयदत्त श्रीधर हैं। जिनकी प्रेरणा से 'सो तेहि काज प्रथम जनु कीन्हा' की हमारी परस्पर की प्रतिस्पर्धा में इस काम को मैंने उनकी निर्धारित समय सीमा के पूर्व सम्पन्न किया है।' और स्वभावतः ही श्रीधर जी ने अपनी भूमिकात्मक 'अस्मिता, अस्तित्व, आत्मबोध' में लिखा 'वेद मर्मज्ञ आचार्य प्रभुदयाल मिश्र की यह पुस्तक गहन चिन्तन से प्रसूत है। यह पाठकों को भारतीय अस्मिता, अस्तित्व और आत्मबोध के अमृत सरोवर में अवगाहन कराएगी।

देवेन्द्र कुमार रावत, संपादक
मो. 9893119507